दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९३ | तंत्री जगजीवन बाउचंद दोशी | वर्ष २२ अंक नं० ९

एक सिद्धांत

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

मोक्षमार्ग के लिये यह एक सिद्धांत है कि मोक्षमार्ग आत्मा के आश्रय से है; इसलिये आत्मारूप जो भाव हुआ हो, वही भाव मोक्षमार्ग है। अब आत्मा का स्वभाव श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र है, उस स्वभावरूप हुआ भाव (-अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप हुआ निर्मलभाव) ही मोक्षमार्ग है; परंतु उससे विरुद्ध भाव, वह मोक्षमार्ग नहीं है। जिसप्रकार मिथ्यात्व कोई मार्ग नहीं है, अज्ञान कोई मार्ग नहीं है, उसीप्रकार शुभाशुभ राग भी कोई मार्ग नहीं है, क्योंकि वे भाव, आत्मा के स्वभावरूप नहीं हैं। वे वास्तव में आत्मारूप नहीं हैं, परंतु अनात्मारूप हैं, विरोधरूप हैं आत्मस्वभाव के साथ जिसकी जाति न मिले, वह मोक्षमार्ग कैसे कहा जायेगा? आत्मा को साधनेवाले परिणाम आत्मारूप होते हैं, अनात्मारूप नहीं होते।—इसप्रकार मोक्षमार्ग में शुद्ध आत्मा ही उपादेय है, शुद्ध आत्मा को उपादेय करनेवाला ही मोक्षमार्ग को साधता है, अन्य कोई मोक्षमार्ग को नहीं साधते। राग का आदर करनेवाला कभी मोक्ष को नहीं साध सकता। किस भाव से मोक्षमार्ग सधता है, उसका यह सिद्धांत बतलाया है।

—परमात्मप्रकाश प्रवचन से

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

जनवरी १९६७] | वार्षिक मूल्य २) | (२६१) | एक अंक २५ पैसा | [पौष सं० २०२३

विषय-सूची

मोक्षार्थी को सेवन करनेयोग्य सिद्धांत
आगमपद्धति और आध्यात्मपद्धति का वर्णन
हे जीव!
स्वानुभूति में सभी आ जाता है
राजा भोज की भावना
भगवान पार्श्वनाथ
अध्यात्म संदेश
विविध वचनामृत
आध्यात्मिक पद
सम्यक् अनेकांत
यह जगत धर्मशाला
लहे जिय परमाणु से शिक्षा
मोक्षमार्ग दो नहीं हैं
शासकों के सद्विचार
निश्चय सम्यक्त्व से ही मोक्षमार्ग प्रारंभ होता है
क्षेत्र एक, भाव में महान अंतर
अनंत सामर्थ्यवान निजात्म द्रव्य की अपूर्व महिमा
अनंतता और उसका ज्ञान
समाचार संग्रह

ग्राहकों को सूचना

समयसार कलश टीका श्री राजमलजी पांडे विरचित दूसरी आवृत्ति छप गई है। प्रथमावृत्ति दो मास में बिक जाने से जोरों से माँग रही थी और प्रथम से १००० उपरांत संख्या में इस पुस्तक के आर्डर आने के बाद छपवाये हैं। जिन बन्धुओं ने आर्डर लिखवाया था, उन सबसे प्रार्थना है कि शीघ्र पत्र दें कि आपकी पुस्तकें कहाँ पर भेजना है। रेलपार्सल से या पोस्ट द्वारा यह भी शीघ्र सूचित करें। श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आत्मधर्म

आजीवन सभ्य योजना

आत्मधर्म मासिक पत्र के हजारों की संख्या में ग्राहक हैं। पत्र ज्यादा से ज्यादा विकसित बने और उनके स्थायी ग्राहकों को हरसाल वार्षिक शुल्क भेजने का कष्ट न हो, संस्था को भी व्यवस्था में सुविधा रहे। अतः ऐसा निर्णय किया गया है कि- १०१) रुपये लेकर 'आजीवन सभ्य' योजना चालू की जाये, एवं उन्हें 'आत्मधर्म' हरसाल बिना वार्षिक शुल्क भेजा जाये। अतः जो सज्जन इस योजना से लाभ उठाना चाहें, वे निम्न पते पर १०१) रुपया भेजकर इस योजना में सहयोग प्रदान करें। यह योजना गुजराती तथा हिन्दी दोनों भाषाओं के 'आत्मधर्म' के लिये चालू की गई है।

पत्र व्यवहार का पता—
मैनेजर दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आत्मधर्म के नये ग्राहकों से निवेदन

इधर दो माह से जो आत्मधर्म के नये ग्राहक बने हैं, या बनेंगे उन्हें आसोज से पहले के अंक नहीं मिल सकेंगे, कारण वे खत्म हो गये हैं। आसोज माह से चैत्र तक के अंक ही मिलेंगे, सो ज्ञात रहे। —प्रकाशक

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

: संपादक : जगजीवन बाउचंद दोशी (सावरकुंडला)

जनवरी : १९६७ ☆ वर्ष २२वाँ, पौष, वीर नि०सं० २४९३ ☆ अंक : ९

मोक्षार्थी को सेवन करनेयोग्य

सिद्धांत

श्री अमृतचंद्रस्वामी अत्यंत स्पष्टरूप से मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करके, मोक्षार्थी को उसी का सेवन करने की सलाह देते हुए समयसार में कहते हैं कि—

सिद्धांतोऽयमुदारचित्तचरितैर्मोक्षार्थिभिः सेव्यताम्
शुद्धनिश्चन्मयमेकमेवपरमं ज्योतिसदैवास्म्यहं।
एतेयेतु समुल्लसंति विविधाः भावाः पृथग्लक्षणाः
तेहं नास्मि यतोत्र ते मम परद्रव्यं समग्रा अपि॥

जिनके चित्त का चरित्र उदात्त (उज्ज्वल) है, ऐसे मोक्षार्थी इस सिद्धांत का सेवन करो कि—

मैं तो शुद्ध चैतन्यमय परमज्योति ही सदा हूँ; और यह जो भिन्न लक्षणवाले विविध प्रकार के भाव प्रगट होते हैं, वह मैं नहीं हूँ, क्योंकि वे सब परद्रव्य हैं

सर्वथा चिद्भाव ही एक ग्रहण करनेयोग्य है; शेष समस्त भाव छोड़ने योग्य हैं—ऐसा सिद्धांत है।

—ऐसे सिद्धांत का सेवन करनेवाला सिद्ध होता है।

आगम पद्धति और आध्यात्म पद्धति का वर्णन

[आध्यात्म पद्धति, वह मोक्षमार्ग : आगमपद्धति, वह संसार]

वस्तु का जो स्वभाव है, उसको आगम कहते हैं; आत्मा का जो अधिकार, उसको आध्यात्म कहते हैं; आगम और आध्यात्मस्वरूप भाव आत्मद्रव्य के जानना। यह दोनों भाव संसार अवस्था में तीनों काल होते हैं, ऐसा जानना।

वस्तु का स्वभाव कहने से यहाँ त्रिकालिक स्वभाव नहीं समझ लेना, परंतु पर्याय का भाव समझना; संसारी जीव को पर्याय में विकार की परंपरा अनादिकाल से चली आ रही है तथा इसमें निमित्तरूप कर्मों की परंपरा भी अनादिकाल से चली आ रही है, उसको यहाँ पर 'आगम पद्धति' कहा गया है। यह आगम पद्धति अशुद्ध है, इसलिये उसमें आत्मा का अधिकार नहीं कहा गया। आध्यात्म पद्धति शुद्धपर्यायरूप है, इसलिये उसमें आत्मा का अधिकार कहा गया है। आगमरूप अशुद्धभाव और आध्यात्मरूप शुद्धभाव, यह दोनों भाव आत्मा के जानना, और ऐसे दोनों भाववाले जीव संसार अवस्था में सदाकाल होते हैं अर्थात् संसार अवस्था में यह दोनों भाव त्रिकालवर्ती कहे गये।

संसार में साधक और बाधक जीव सदाकाल होते हैं; संसार में किसी समय अकेला अशुद्धपर्यायवाला ही जीव रह जाये और शुद्धपर्यायवाला जीव कोई न रहे, ऐसा कभी बनता नहीं, उसीप्रकार सभी जीव शुद्धपर्यायवाले हो जायें और अशुद्धपर्यायवाला कोई भी जीव नहीं रहे, ऐसा भी कभी बनता नहीं। अर्थात् अशुद्धभावरूप आगम पद्धति और शुद्धभावरूप आध्यात्म पद्धति यह दोनों भाव संसार में तीनों काल से चले आ रहे हैं। यह बात संसार में रहे हुए भिन्न-भिन्न जीवों की अपेक्षा से समझना, अर्थात् कि कोई जीव शुद्धपर्यायवाले होते हैं, कोई जीव अशुद्धपर्यायवाले होते हैं; कोई मिश्रपर्यायवाले भी होते हैं - इसप्रकार दोनों भाव तीनोंकाल से हैं ऐसे मानना। परंतु एक ही जीव में यह भाव सदा रहा करें, ऐसा नहीं समझना; नहीं तो अशुद्धता दूर होकर शुद्धता कभी नहीं होगी। अथवा शुद्धपर्याय भी अनादि की हो, ऐसा भी नहीं है। एक जीव व्यक्तिगत अपनी पर्याय में से अशुद्धता दूरकर शुद्धता प्रगट कर सकता है

परंतु जगत में से अशुद्धता का सर्वथा अभाव हो जाये–ऐसा कभी बनने का नहीं। जगत में तो सभी भाववाले जीव सदाकाल रहनेवाले हैं। जगत में सिद्ध भी अनादिकाल से होते आये हैं और निगोद एकेन्द्रियवाले भी अनादि से हैं, मिथ्यादृष्टि भी अनादिकाल से हैं और सम्यग्दृष्टि भी अनादिकाल से होते आये, अज्ञानी भी हैं और केवलज्ञानी भी हैं, इसप्रकार सभी तरह के जीव जगत में सदा रहनेवाले हैं – कोई जीव समस्त जगत में से अज्ञान का और अशुद्धता का अभाव करना चाहे तो ऐसा नहीं कर सकता। परंतु स्वयं अपनी आत्मा में से अज्ञान और अशुद्धता को दूर करके केवलज्ञान प्राप्त करके सिद्धपद प्रगट कर सकता है।

जितने भी शुभाशुभ व्यवहारभाव हैं, वह सभी आगम पद्धति में हैं; आगम पद्धति वह बंध पद्धति है, अथवा कर्म पद्धति है, उसमें धर्म नहीं है। धर्म तो आध्यात्म पद्धति में है; आध्यात्म पद्धति, वह मोक्षमार्गरूप है, वह शुद्धभावरूप है। इस शुद्धभावरूप आध्यात्म पद्धति में आत्मा का अधिकार कहा गया है, परंतु आगम पद्धति में आत्मा का अधिकार नहीं कहा गया है, कारण कि वह आत्मा के स्वभावरूप नहीं परंतु विभावरूप है। यहाँ पर 'आगम पद्धति' शब्द कहा, इसमें आगम का अर्थ सिद्धांतरूप शास्त्र नहीं समझना; परंतु आगम पद्धति अर्थात् अनादि से चली आ रही परम्परा; अर्थात् आगम अर्थात् आगन्तुकभाव। विकारीभाव हैं, वह नये आगन्तुक हैं, वह स्वभाव में नहीं परंतु कर्म निमित्त से पर्याय में नये–नये उत्पन्न बने हुए हैं, और अनादि से इनका प्रवाह चला आ रहा है, विकार और उसके निमिततरूप कर्म इन दोनों का प्रवाह अनादि से चला आता है, इसका नाम आगम पद्धति है और जीव में जो नवीन अपूर्व आध्यात्मदशा अर्थात् शुद्धपर्याय प्रगट हुई, वह आध्यात्म पद्धति है। ऐसे दोनों प्रकार के भाव जगत में सदा होते रहते ही हैं। इन दोनों का अब विवेचन किया जाता है—

आगमरूप पद्धति कर्म पद्धति है; आध्यात्मरूप शुद्धचेतना पद्धति है, इसका विवेचन—

❀ कर्म पद्धति पौद्गलिक द्रव्यरूप अथवा भावरूप है। द्रव्यरूप तो पुद्गल के परिणाम हैं; भावरूप पुद्गलाकार आत्मा की अशुद्धपरिणतिरूप परिणाम है, इन दोनों परिणामों की आगमरूप स्थापना की है।

❀ अब शुद्धचेतनापद्धति अर्थात् शुद्धात्म परिणाम; यह भी द्रव्यरूप और भावरूप दो प्रकार से हैं। द्रव्यरूप तो जीव परिणाम, और भावरूप ज्ञान, दर्शन–सुख–वीर्य आदि अनन्त

गुणपरिणाम—यह दोनों परिणाम आध्यात्मरूप जानना।

'इस आगम और आध्यात्म की दोनों पद्धति में अनंतता मानना'

देखो, अब यह सूक्ष्म बात! परन्तु है तो जीव के अपने परिणाम की बात। जीव की पर्याय में किस-किसप्रकार के भाव होते हैं, उसको समझने की बात है, अर्थात् ध्यान रखकर समझने जैसी है।

आत्मा की परिणति में अशुद्धता अनादि से है, यह स्वभावगत भाव नहीं है, आगन्तुक विकारी भाव है। यह परिणाम स्वभाव-आकाररूप नहीं है अर्थात् इसको पुद्गलाकाररूप कहने में आया, कारण कि पुद्गलकर्म इसमें निमित्त हैं।

पुद्गल कर्म की परंपरा अर्थात् द्रव्यरूप कर्म पद्धति, और उसके निमित्त से होते हुए जीव के विकार की परम्परा, वह भावरूप कर्म पद्धति है। इसप्रकार द्रव्य और भावकर्म की परम्परारूप आगम की पद्धति है। यह दोनों भाव जीवद्रव्य के कहे हैं।

प्रश्न—जो द्रव्यकर्म की परम्परा, वह तो पुद्गल की पर्याय है, और फिर यहाँ इसको जीव के भाव क्यों कहा गया?

उत्तर—यह पुद्गल की पर्याय है, यह बात सत्य है परंतु जीव के अशुद्धभाव के साथ उसका संबंध है, जीव के अशुद्ध भाव के साथ सयोगवाला उसका परिणमन है, इससे यहाँ इस कर्म पद्धति को भी जीव का भाव कह दिया है। जीव के साथ जिसको संबंध नहीं है, ऐसे दूसरे अनंत परमाणु जगत में हैं, परंतु उनकी बात यहाँ पर नहीं है। यहाँ पर तो जीव के परिणाम के साथ जिसका निमित्त-नैमित्तिक संबंध है, ऐसे पुद्गलों की बात है। लकड़ी-घर-शरीर इत्यादि का संबंध तो कभी तो होता है, कभी नहीं भी होता है, परंतु संसार में जीव को कर्म का संबंध तो सदाकाल रहता ही है; इस संबंध को बताने के लिये उसको भी जीव का भाव कहा गया है-ऐसा समझना।

आत्मद्रव्य और उसके ज्ञानादि गुणों के जो शुद्ध परिणाम हैं, वह आध्यात्म पद्धतिरूप हैं; यह आध्यात्म पद्धति शुद्धचेतनारूप है अर्थात् इसमें विकार और कर्मों का संबंध नहीं आता है।

द्रव्य के शुद्ध परिणाम, वह द्रव्यरूप शुद्धचेतनापद्धति है। और ज्ञान-श्रद्धा-चारित्र इत्यादि गुण के शुद्धपरिणाम वह भावरूप शुद्धचेतनापद्धति है-यह दोनों परिणाम आध्यात्मरूप जानना।

आगम पद्धति संसार का कारण है, आध्यात्मपद्धति मोक्ष का कारण है। जिससे कर्मों का बंध हो, वह सभी भाव आगम पद्धति में जाते हैं। व्यवहाररत्नत्रय में शुभराग है, वह भी आगम पद्धति में जाता है; शुद्ध चेतनारूप जितने भाव हैं, वह आध्यात्मपद्धति में आते हैं। इन दोनों पद्धति की धारा एक-दूसरे से विरुद्ध है। इन दोनों पद्धति में अनंतता मानना; आत्मा के विकारी भावों में अनंत प्रकार हैं और उसमें निमित्तरूप कर्म में भी अनंत प्रकार हैं; आत्मा के निर्मल परिणामों में भी अनंत गुण के अनंत प्रकार हैं, ज्ञानादि गुणों के परिणमन में भी अनंत प्रकार हैं। इसप्रकार अशुद्धता और शुद्धता इन दोनों में अनंतता समझना।

जिसप्रकार समयसार में अज्ञानी को पुद्गल कर्म के प्रदेश में स्थित कहा, उसीप्रकार यहाँ अशुद्ध परिणाम को पुद्गलाकार कहा, वह आत्मा के स्वभाव की जाति का नहीं; अतः उसको आत्मा का आकार नहीं कहा गया। आत्मा के आश्रय से प्रगट हुए, आत्मा के शुद्ध परिणाम हैं, वह तो आत्म-आकार है, उसमें पुद्गल का जरा भी संबंध नहीं है। आत्मा के स्वभाव के साथ जो भाव संबंध रखते हों, वही भाव आत्मा को सुख के कारण हैं। पुद्गल के साथ जिन भावों का संबंध हो, वह भाव आत्मा के सुख के कारण नहीं हैं। इससे वह भाव उपादेय नहीं हैं; वह तो आगन्तुक अर्थात् बाहर से आये हुए हैं। यह कोई घर में से प्रगट हुए नहीं हैं, और घर में रहनेवाले भी नहीं। इन भावों में वास्तव में आत्मा नहीं है, इनमें मोक्षमार्ग भी नहीं। जो भी शुभाशुभभाव हैं, उसमें आत्मा का अधिकार नहीं है परंतु आस्रव का अधिकार है, बंध का अधिकार है। इन विकारी भावों का स्वामित्व आस्रव और बंधतत्त्व को है। आत्मा के स्वभाव को उसका स्वामित्व प्राप्त नहीं है, इसलिये उसमें आत्मा का अधिकार नहीं है। आत्मा का अधिकार तो शुद्धचेतनापरिणाम में है। आगम पद्धति है, वह उदय भाव है, और आध्यात्मपद्धति उपशम-क्षायिक और सम्यक् क्षयोपशम भावरूप है।

पुण्य-पाप-आस्रव-बंध और अजीव कर्म, यह पाँचों तत्त्व आगम पद्धति में आ जाते हैं, और संवर-निर्जरा-मोक्ष और शुद्ध जीव, यह चार तत्त्व आध्यात्म पद्धति में आते हैं। इसप्रकार दोनों पद्धति एक-दूसरे से विलक्षण है। उसका स्वरूप पहिचाने तो भेदज्ञान होकर मोक्षमार्ग प्रगट हो जाये; अर्थात् अपने में आध्यात्म की परम्परा का विकास होने लगे और आगम की (कर्म की तथा अशुद्धता की) परम्परा टूटने लगे - इसका नाम धर्म। ऐसी आध्यात्म पद्धति का (अर्थात् कि-शुद्ध परिणमन की परम्परा का) प्रारम्भ काल चौथे गुणस्थान से होता

है। चौथे से चौदहवें गुणस्थान तक आध्यात्मपद्धति है; परंतु वहाँ जितनी अशुद्धता और कर्म का संबंध है, उतनी आगमपद्धति है। वह सर्वथा छूट जाने पर संसार दूर हो जाता है और सिद्धदशा प्रगट हो जाती है; वहाँ पर बाद में पुद्गल कर्म के साथ का किंचित् भी संबंध नहीं रहता, और संसार की अनादि की परम्परा की अत्यंतता से दूर हो जाती है।

अज्ञानी तो आगमपद्धति को, अर्थात् विकार तथा कर्म के संबंध को ही जीव का स्वरूप मानता है, जीव के शुद्धस्वरूप को तो जानता नहीं, अर्थात् उसको आध्यात्मपद्धति और आगमपद्धति इन दोनों में से एक का भी ज्ञान नहीं है। उसको आगमपद्धति तो है परंतु आगमपद्धति का ज्ञान नहीं; शुभराग आदि आगमपद्धति को ही वह तो आध्यात्मपद्धति मान लेता है, यह बात आगे आयेगी। आगम तथा आध्यात्मपद्धति का वास्तविक ज्ञान सम्यग्ज्ञानी को ही होता है।

संसार में आगम और आध्यात्मपद्धति दोनों त्रिकाल से है, किंतु व्यक्ति विशेष–एक जीव को आगमपद्धति अनादि से है और आध्यात्मपद्धतिरूप साधकदशा असंख्य समय की होती है, इससे अधिक नहीं होता; और कोई जीव साधकदशा में दीर्घ से दीर्घ काल तक रहे तो असंख्य समय है और कोई जीव साधकदशा में कम से कम काल रहकर सिद्ध हो तो भी उसको साधकदशा में असंख्य समय तो होता ही है। संसार में हर एक जीव को यह सभी भाव होना ही चाहिये, ऐसा नियम नहीं है; जिसको वैसा लग सके, वैसा समझ लेना चाहिये।

हे जीव!

जो तेरे को शरीर रहित बनना हो,
कर्म का ध्वंस करना हो,
और विकारभावों का अभाव करना हो,
— तो —
शरीर रहित ऐसा अशरीरी,
कर्म से रहित ऐसा अबंध,
और विकार रहित ज्ञानस्वभावी,

ऐसे तेरे आत्मा को शुद्धनय की दृष्टि से तू देख। इस स्वभाव को अनुभव में लाने से तेरे भाव –कर्म दूर हो जायेंगे, द्रव्यकर्म पृथक् हो जायेंगे और कर्मरहित ऐसे सिद्धपद की तुझे प्राप्ति होगी।

स्वानुभूति में सभी आ जाता है

सम्यग्दर्शन से लेकर सिद्धपद तक शुद्धता स्वानुभूति द्वारा प्रगट होती है, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप मोक्षमार्ग स्वानुभूति में आ जाता है। संत और शास्त्र स्वानुभूति प्राप्त करने का आदेश देते हैं। जो शास्त्र तरफ ही देखा करे और आत्मा तरफ झुककर स्वानुभूति करता नहीं, उसने शास्त्र की आज्ञा को नहीं माना। जिसने स्वानुभव किया, उसने सभी शास्त्रों का रहस्य जान लिया। इसप्रकार स्वानुभूति में सभी शास्त्रों का रहस्य आ जाता है।

आत्मानुभूतिरिति शुद्ध नयात्मिकाया ज्ञानानुभूतिरियमेवकिलेतिबुद्ध्वा।
आत्मानमात्मनि निवेश्य सुनिष्प्रकम्पमेकोस्ति नित्यमवबोधघनः समन्तात्॥१३॥

अहो, यह स्वानुभूति-जैन शास्त्र का मर्म है। जैन शासन का रहस्य स्वानुभूति में समाविष्ट हो जाता है। मुनिवरों के अंतर में ऐसी स्वानुभूति का प्रवाह वर्तता है, वही मोक्षमार्ग है। साथ में महाव्रत का शुभराग हो, वह कोई मोक्षमार्ग नहीं है। मोक्षमार्ग का भाव, और रागभाव, यह दोनों भाव पृथक्-पृथक् हैं; मोक्षमार्ग का भाव तो स्वानुभूति में आ जाता है और रागभाव तो स्वानुभूति के बाहर रह जाता है - ऐसी भिन्नता का अनुभव किये बिना मोक्षमार्ग की साधना नहीं हो सकती।

मोक्षमार्ग में आवश्यकता किसकी ?-कि स्वानुभूति की।

स्वानुभूति बिना मोक्षमार्ग होता नहीं।

मोक्षमार्गी को बीच में रागादि भाव भले ही आवो, परंतु उस भिन्न भावों की आवश्यकता नहीं, उसके आधीन मोक्षमार्ग नहीं है। रागादि भाव न होय तो मोक्षमार्ग नष्ट हो जाये; रुक जाये-ऐसा नहीं है, मोक्षमार्ग स्वानुभूति के आधीन है, जहाँ स्वात्मानुभूति नहीं है, वहाँ मोक्षमार्ग नहीं।

चौथे गुणस्थान में जो सम्यग्दर्शन के साथ स्वानुभूति हो गई है, उस स्वानुभूति द्वारा आत्मा स्वयं अपने स्वरूप में प्रवेश करके शुद्ध होती है; इसलिये स्वानुभूति, मोक्ष का प्रवेश

द्वार है। और यह आत्मानुभव परद्रव्य की सहायता से रहित है। राग भी अनुभव से पर है, इसकी सहायता की आवश्यकता भी अनुभव में नहीं है।

अनुभव अर्थात् क्या ?

अनुभव अर्थात् वस्तु का प्रत्यक्ष आस्वाद। आत्मा के अतीन्द्रिय आनंद का प्रत्यक्ष आस्वाद आवे, इसका नाम आत्मानुभव।

प्रश्न—किसी समय आत्मा की अनुभूति कहते हो, तो किसी समय ज्ञान की अनुभूति कहते हो, तो आत्मा की अनुभूति और ज्ञान की अनुभूति इनमें क्या विशेषता है ? या दोनों एक ही हैं।

उत्तर—इनमें कोई विशेषता नहीं; आत्मा की अनुभूति कहो या ज्ञान की अनुभूति कहो दोनों एक ही हैं; इससे कहा है कि—

आत्मानुभूतिरिति शुद्ध नयात्मिकाया ज्ञानानुभूतिरियमेवकिलेतिबुद्ध्वा....

शुद्धनय से जो आत्मा की अनुभूति है, वह वास्तव में ज्ञान की अनुभूति;—इसप्रकार निश्चय करके क्या करना ? कि सदा सभी ओर से जो ज्ञानघन है ऐसे आत्मा में प्रवेश करके उसका अनुभव करना। ऐसे अनुभव से आत्मा शुद्ध होती है। आत्मा का अनुभव सभी ओर से ज्ञानमय ही है, इस अनुभव में राग को प्रवेश करने की मनाई है। आत्मा का अनुभव पर की और परभाव की सहायता रहित है। जिस भाव का प्रवेश अनुभव में नहीं हो सकता, वह परभाव अनुभव में मदद करनेवाला किसप्रकार हो सकता है ? अनुभव तो परभाव का क्षयकरणशील है, क्षय (करनेवाला है)।

विश्राम लेने का धाम (स्थान) तो अनुभव में है। इसप्रकार जिज्ञासु शिष्य ने लक्ष्य में लिया है। वहाँ पर ऐसा प्रश्न नहीं उत्पन्न होता कि किसी प्रकार राग की सहायता होगी ? व्यवहार का कोई अवलंबन होगा ? एक बात तो पकड़ ली कि मोक्षमार्ग तो स्वानुभव से होता है। कभी शास्त्र में ऐसी भाषा भी आती है कि शुद्ध आत्मा की अनुभूति करने से आत्मा शुद्ध होती है, और किसी समय ऐसा भी आता है कि ज्ञानमात्र की अनुभूति से आत्मा शुद्ध होता है; इसमें शिष्य का प्रश्न होता है कि शुद्ध आत्मा की अनुभूति और ज्ञान की अनुभूति में क्या अंतर है ? तो कहते हैं कि नहीं; दोनों में कोई विशेषता नहीं है, अंतर नहीं; शुद्ध आत्मा की अनुभूति और ज्ञान की अनुभूति दोनों एक ही है। शुद्धनय से ऐसे आत्मा को अनुभव में लेने से आत्मा शुद्ध होती है–इसका नाम मोक्षमार्ग है।

ज्ञान, वह आत्मा का स्वभाव है, अर्थात् वह आत्मा ही है। ज्ञान कहो या आत्मा कहो, शुद्धनय से उसका अनुभव होता है, स्वयं अपने स्वरूप में प्रवेश कर उसका अनुभव करता है। इसमें कोई दूसरे की उपाधि (हस्तक्षेप) नहीं, दूसरे की सहायता नहीं, दूसरे की अपेक्षा नहीं। जैसी शुद्ध वस्तु है, ऐसा ही अनुभव है। शुद्ध वस्तु में जिसप्रकार अशुद्धता नहीं, उसीप्रकार उसकी अनुभूति में भी अशुद्धता नहीं। निरुपाधिरूप से शुद्ध जीव वस्तु जैसी है, वैसी ही प्रत्यक्ष स्वाद में आवे, उसका नाम शुद्धता का अनुभव है। ऐसा अनुभव शुद्धनय द्वारा होता है, इसलिये अनुभूति को शुद्धनयस्वरूप कहा गया है।–अशुद्धता, विकल्प, राग उसमें जाते नहीं। ऐसी अनुभूति में सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र मोक्षमार्ग आ जाता है।

अनुभूति ने जहाँ निजस्वरूप में प्रवेश किया, वहाँ उसमें केवल शुद्ध द्रव्य का ही स्वाद रहा, दूसरे सभी परभाव बाहर रह गये। ऐसी अनुभूति करने की शास्त्र की आज्ञा है, कारण कि वही मोक्षमार्ग है–ऐसा जानना।

जिसने ज्ञानस्वरूप शुद्ध आत्मा का अनुभव किया, उसने बारह अंग के रहस्य को जान लिया; बारह अंग में भी शुद्ध आत्मा का अनुभव करने का ही उपदेश है, और उस ही को मोक्षमार्ग कहने में आया है। किसी को संशय हो कि बारह अंग का ज्ञान तो अपूर्व लब्धि है, अर्थात् शास्त्र के जानने की ही महत्ता आई परंतु अनुभव की महिमा को न जाना, तो कहते हैं कि भाई, आत्मानुभव यही मोक्षमार्ग है–ऐसा द्वादशांग में भी कहा है। इसलिये जहाँ शुद्धता की अनुभूति हुई, वहाँ ऐसा कोई नियम नहीं कि इतने शास्त्रों का ज्ञान होना ही चाहिये। ज्ञान की अनुभूति को मोक्षमार्ग कहते; कोई शास्त्रज्ञान को मोक्षमार्ग समझ जाये, तो कहते हैं कि शास्त्र के लक्ष से हुए ज्ञान में तो विकल्प है, उसको हम वास्तव में ज्ञान की अनुभूति कहते नहीं। शुद्धात्मा की जो अनुभूति है, वही ज्ञान की अनुभूति है, और वही मोक्षमार्ग है। बारह अंग का ज्ञान तो सम्यग्दृष्टि संयमी को ही होता है; सम्यग्दृष्टि को उसमें विकल्प है, शास्त्र की ओर का ज्ञान, वह मोक्ष का कारण नहीं, तो फिर दूसरा शुभराग मोक्ष का कारण किसप्रकार हो सकता है? बारह अंग के शास्त्र स्वयं ऐसा कहते हैं कि हमारे तरफ का झुकाव तो मोक्ष का मार्ग नहीं है परंतु तेरे शुद्ध स्वरूप की अनुभूति कर, तो मोक्ष का मार्ग है। शास्त्र की तरफ देखा करे और शास्त्र ने कहा, उस आत्मा तरफ न जावे तो उसने वास्तव में शास्त्र–आज्ञा को माना ही नहीं। जिसने स्वानुभूति की, उसने सभी शास्त्रों का रहस्य जान लिया।

इसप्रकार, स्वानुभूति को ऐसे किसी शास्त्रज्ञान का प्रतिबंध नहीं है कि इतने शास्त्र पढ़ने पर ही अनुभूति हो। शास्त्र नहीं पढ़ा हो तो भी मेंढ़क भी स्वानुभूति कर सकता है। शास्त्र भले ही न पढ़ा हो परंतु शास्त्रों ने जो करने को कहा, वह उसने अपने में कर लिया अर्थात् शास्त्र का रहस्य उसने स्वानुभूति द्वारा प्राप्त कर लिया। अनुभूति कोई शास्त्रों को अवलंबित नहीं, अनुभूति तो शुद्ध आत्मा का ही अवलंबन रखती है, अहो! ऐसी निरालंबी अनुभूति की अपार महिमा है। इसलिये।

हे मोक्षार्थी जीवो! मोक्ष के लिये शुद्ध आत्मा की ऐसी अनुभूति करो।

राजा भोज की भावना

प्रेषक—महेन्द्र जैन 'प्रेम' (आयु १५ वर्ष)

महाराज भोज एक आदर्श दानी थे। दान करते-करते उन का खजाना खाली हो चला। तब मंत्रीगण उन्हें दान बन्द करने की सलाह तो न दे सके किंतु उन्होंने महाराज की बैठक के सामने एक श्लोक का चरण लिख दिया—

आपदर्थं धन रक्षेत् (आपत्ति काल के लिये धन की रक्षा करना चाहिये।)

महाराज भोज इसको पढ़कर मंत्रियों का आशय समझ गए। उन्होंने वहीं पर लिख दिया—

श्रीमतां कुतः आपदः (श्रीमानों को आपत्ति कैसी ?)

तब मंत्री ने फिर से लिख दिया—

दैवात् क्वचित् समाप्नोति (दुर्भाग्य से कभी आ जाय तो ?)

तब महाराज ने इसका उत्तर लिखा—

संचितोऽपि विनश्यति (जब दुर्भाग्य आयेगा तो संचित लक्ष्मी भी नष्ट हो जायेगी।)

इससे आगे मंत्री को लिखने का कुछ साहस न हुआ।

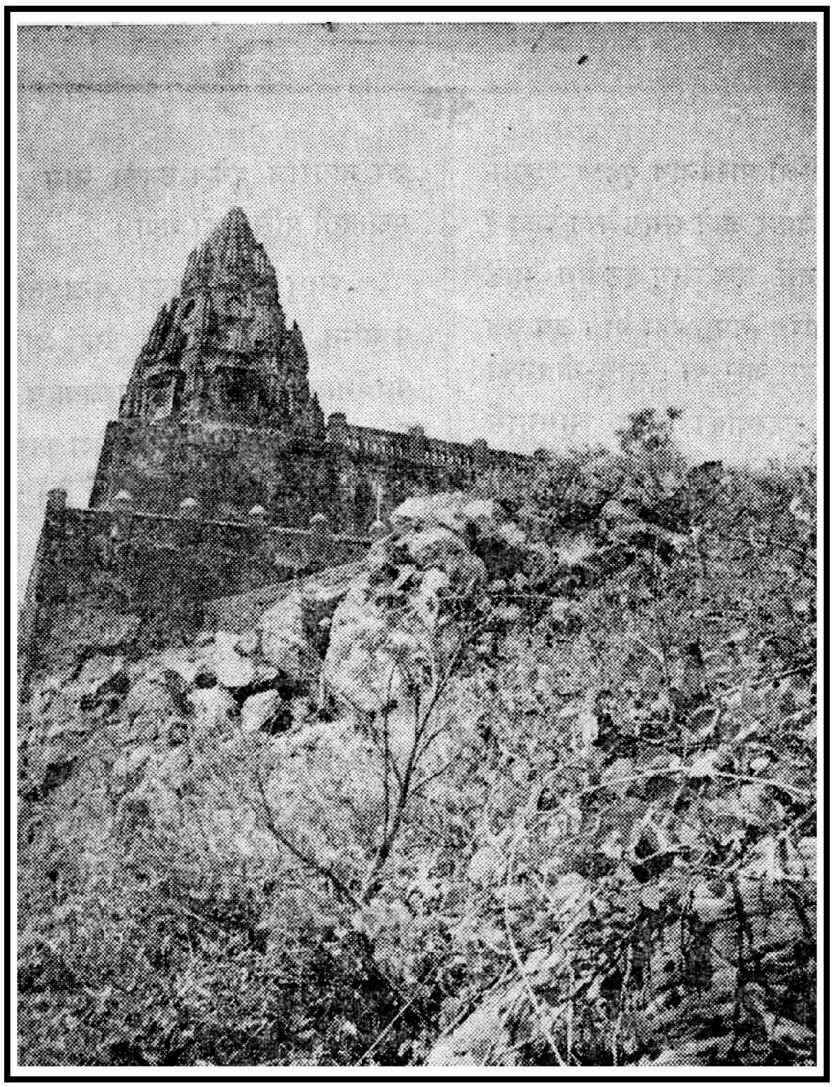

शाश्वत तीर्थाधिराज श्री सम्मेदशिखरजी सिद्धक्षेत्र जैनों का सर्वोत्तम तीर्थक्षेत्र इसलिये है कि यहाँ नीचे चित्रा पृथ्वी पर रत्न का शाश्वत स्वस्तिक है। दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम काल की एक चौबीसी ऐसी अनंतानंत चौबीसी में हुंडावसर्पिणी काल को छोड़कर सदैव सब चौबीसी में २४ तीर्थंकर और असंख्य मुनिगण यहाँ से निर्वाण-मुक्ति, सिद्ध परमात्मदशा को पाकर सिद्धालय निवासी होते हैं। इसलिये इस सिद्ध भूमि की अपार भक्तिवश महिमा बतलाई गई है। श्री पार्श्वनाथ भगवान २३ वें तीर्थंकर हो गये। उनका संक्षिप्त वर्णन—

भगवान पार्श्वनाथ

बालब्रह्मचारी श्री पार्श्वनाथ गृहस्थ दशा में थे, एकबार नगर के बाहर जाते समय क्या देखा ? कि बनारस के उद्यान में एक साधु हठयोग मांडे बैठा था। वह पंचाग्नि तप रहा था। तब यज्ञ और हठयोग का बड़ा जोर था। साधु-जीवन को भ्रष्ट कर रखा था। गृहस्थों की तरह आश्रमों में रहना, साधु नामधारियों में एक चलन हो गया था। माँस और मदिरा से भी उन्हें परहेज नहीं था। यज्ञों के नाम पर पशु हिंसा खूब होती थी। जमाना बड़ा भयानक था। जनता दु:खी थी, सब चाहते थे कि उन्हें आकर बचा ले, आखिर उसकी मनचेती हुई। युगप्रवर्तक राजकुमार पार्श्वनाथ में उसे शरण मिल गई।

राजकुमार टहलते हुये उसी बगीचे में आ निकले जिसमें साधु बैठा पंचाग्नि तप रहा था। उन्होंने पहचाना 'यह तो मेरे नाना हैं।' उनका जी उनकी धर्ममूढ़ता पर दु:खी हुआ। और हाँ, उन्होंने अपने ज्ञाननेत्र से यह भी देखा कि जिस लक्कड़ को साधु जला रहा है, उसकी खुखाल में सांप का एक जोड़ा मरणासन्न हो रहा है। राजकुमार ने साधु को सम्बोधा; किंतु हठी और घमंडी परिव्राजक को यह सहन न हुआ। वह बहुत बिगड़ा, आव गिना न ताव, झट से उठकर कुल्हाड़ी से जलता हुआ लक्कड़ फाड़ने लगा। सचमुच उसमें से बिलबिलाता हुआ सर्प युगल निकल पड़ा। दयालु पार्श्वनाथ ने उन्हें शांतिप्रदायक धर्मवाणी सुनाई; जिसके प्रभाव से वे मरकर नागराज हुये। उनका नाम धरणेन्द्र और पद्मावती प्रसिद्ध हो गया।

साधु यह देखकर कटा तो जरूर, किंतु पंचाग्नि तपना उसने नहीं छोड़ा। राजकुमार पार्श्वनाथ ने बहुत कुछ समझाया व कहा—'ज्ञान के बिना कोरा हठयोग-कायक्लेश कार्यकारी नहीं है। यह पंचाग्नि जीवहिंसा का घर है। भला, हिंसामयी, कार्य में धर्म कैसे हो सकता है ?' किंतु मूढ़मति साधु की समझ में कुछ भी न आया।

राजकुमार पार्श्वनाथ लौटकर अपने राजमहल चले आये। यह घटना ई० पूर्व आठवीं शताब्दी में घटित हुई थी। तब बनारस, काशी नामक देश की राजधानी थी और राजा विश्वसेन वहाँ राज्य करते थे। राजकुमार पार्श्वनाथ इन्हीं के सुपुत्र थे। जिससमय राजकुमार पार्श्वनाथ रानी वामादेवी के गर्भ में आये थे, उससमय उन्होंने अच्छे-अच्छे सोलह सपने देखे थे। उनके फलस्वरूप राजा ने जान लिया था कि उनके बड़ा होनहार पुत्र होगा। वह तेईसवें तीर्थंकर होंगे। सचमुच भगवान पार्श्वनाथ २३वें तीर्थंकर ही थे।

तीर्थंकरों के गर्भ, जन्म, दीक्षा, ज्ञान और निर्वाण—इन पाँच सुअवसरों पर देव और मनुष्य आनन्दोत्सव मनाते हैं। यह 'पंच कल्याणकोत्सव' कहे जाते हैं। तीर्थंकर पार्श्वनाथ के संबंध में भी यह घटित हुए थे।

जब पार्श्वनाथ युवा हुये तो उनके माता-पिता ने चाहा कि इनका ब्याह हो जाये; किंतु वे इस प्रस्ताव पर राजी न हुये। जिनके पवित्र ब्रह्मचर्य का रंग लगा था, फिर वह विवाह कैसे करते ? इसके साथ ही उन्होंने अयोध्या के राजदूत की जवानी वहाँ के राजाओं की चरितावली सुनी। भगवान ऋषभदेव की जीवनी ने उन्हें प्रभावित कर दिया। वैराग्य उनके रोम-रोम में समा गया, वह घर छोड़कर वन को चले गये।

दिगम्बर मुनि होकर पार्श्वनाथजी ने घोर तपस्या की। एक रोज वह काशी के पास एक वन में ध्यानमग्न बैठे थे। उनके पूर्वजन्म का विरोधी जीव संवरदेव आकर उन पर घोर उपसर्ग करने लगा। भगवान पार्श्वनाथ ने यह सब पूर्ण शांति से सह लिया, कुछ भी बुरा न माना। उस पर धरणेन्द्र ने आकर अपना फण भगवान के सिर पर फैला दिया, किंतु भगवान तो स्वत: अजेय थे, किसी को जरा भी भला बुरा न माना, न राग-द्वेष उत्पन्न किये। बस संवर (संवर नामक व्यंतरदेव) यह देखकर दंग रह गया, आखिर वह भगवान के चरणों में आ गिरा।

पौष कृष्णा एकादशी को भगवान पार्श्वनाथ साधु हुये थे और इसके चार महीने बाद चैत्र कृष्णा चतुर्दशी को उन्हें सर्वज्ञता प्राप्त हो गई थी। यह संवरदेव के उपसर्ग के बाद ही हुई थी, अब भगवान सर्वज्ञ तीर्थंकर हो गये थे।

तीर्थंकर पार्श्वनाथ ने देश में चारों ओर घूमकर धर्मोपदेश दिया था योग्य जीवों में सद्ज्ञान का प्रचार हुआ और सचमुच उनके धर्मोपदेश से उस समय एक उलटफेर हो गया था। अंधेरा हटाना नहीं पड़ता, प्रकाश होते ही अंधकार उत्पन्न ही नहीं होता। इसप्रकार से निर्मल ज्ञान के प्रकाश द्वारा ही अज्ञानरूपी अंधेरा नष्ट हो जाता है।

ब्रह्मचर्य और अहिंसा की उस समय भी आवश्यकता थी। भगवान पार्श्वनाथ ने इन पर जोर दिया था। जनता को इससे बड़ा संतोष हुआ और भगवान 'जनप्रिय' हो गये। उनका विहार कुरु, कौशल, काशी, अवंती, पुंड्र, मालवा, अंग, बंग, कलिंग, पांचाल, विदर्भ, भद्र, दशार्ण, कर्णाटक, भौंकण, मेदपाद, द्राविड़, काश्मीर, शाक, पल्लव आदि देशों में हुआ था।

भगवान पार्श्वनाथ के मुख्य शिष्य स्वयंभू गणधर थे और उनके अतिरिक्त नौ गणधर और थे। ग्यारह अंग चौदह पूर्व के धारी मुनियों की संख्या ३५० थीं। दस हजार नौ सौ शिक्षक मुनि थे और एक हजार चार सौ अवधिज्ञानी थे। इसीप्रकार एक हजार केवलज्ञानी थे। एक ही हजार विक्रियाऋद्धि को धारण करनेवाले थे। ७५० मन:पर्ययज्ञानी और ६०० वादी थे। इसतरह कुल १६००० मुनि उनके शिष्य थे। उन भगवान के संघ में सुलोचना आदि छत्तीस हजार आर्यिकायें थीं, एक लाख श्रावक थे और तीन लाख श्राविकायें थीं।

अंत में भगवान पार्श्वनाथ सम्मेदशिखर पर्वत पर आ बिराजे और वहाँ से श्रावण शुक्ला सप्तमी को मोक्षधाम सिधार गये। श्री पार्श्वनाथ आदि सर्व तीर्थंकरों की जय।

[नोट—हमारे कहने से उनकी जय नहीं है। वे तो सब स्वयंभू परमात्मदशा प्राप्त करने से सदा जयवंत ही हैं किंतु हम उनके समान प्रथम निर्मल श्रद्धा-ज्ञान द्वारा वीतरागता-यथार्थता को ग्रहण कर सच्चे बनें, तब तो व्यवहार में जय जिनेन्द्र है, अन्यथा नहीं।]

यह जगत धर्मशाला!

एक साधु धर्मशाला के बदले राजभवन में चले गये। राजा ने पूछा—'स्वामिन्! कहाँ जाना है? यह तो राज भवन है!'

'धर्मशाला में' चैतन्य महाप्रभु ने कहा।

'यह तो राजदरबार है, यह विशाल राजभवन भी आपको धर्मशाला समझ में आ रहा है।' राजा ने तर्क में कह दिया।

'राजन्! यह सारा संसार ही धर्मशाला है, जहाँ अनेक प्राणी कुछ दिन के मेहमान बनकर आते और फिर अपनी-अपनी गली चले जाते। फिर क्या इस राजभवन के वासी हमेशा बने रहेंगे?'

यह महल अटारी खड़े रहें, जब चेतन पक्षी उड़ जाता।
यह जग एक मुसाफिर खाना, प्राणी ही आता जाता॥ (सन्मति संदेश से)

अध्यात्म संदेश

श्री कानजीस्वामी के प्रवचन में से

(१०१) रे श्रावक! यदि भवदुःख तुझे प्रिय न लगता हो और स्वभाव-सुख का अनुभव तुम लेना चाहते हो, तो अपने ध्येय की दिशा को बदल दो। जगत से उदास होकर अंतर में चैतन्य के ध्यान से परम आनंद प्रगट होगा और भव की बेल क्षण में मुरझा जायेगी। आनंदकारी परम-आराध्यदेव तेरे में ही विराज रहा है।

(१०२) ज्ञानदान या शास्त्रदान की भी बहुत महिमा है। आहारदान की तरह शास्त्रदानादि का भाव भी गृहस्थ को होता है। सच्चे शास्त्र की पहिचान करके जिसने अपने में सम्यग्ज्ञान प्रगट किया है, उसको ऐसी भावना आती है कि अहो! ऐसी उपकारी जिनवाणी व ऐसी गुरुवाणी का जगत में प्रचार हो और जीव सम्यग्ज्ञान पाकर अपना हित करें। ज्ञान के बहुमानपूर्वक शास्त्रदान से क्षयोपशम खिल जाता है। कुन्दकुन्द आचार्य के जीव ने पूर्वभव में गोपलक की (ग्वाले की) पर्याय में भक्तिपूर्वक मुनिराज को शास्त्रदान दिया था, यह बात शास्त्रदान के उदाहरणरूप से प्रसिद्ध है।

(१०३) ज्ञानदान अर्थात् शास्त्रदान करनेवाले श्रावक को सत्शास्त्र व कुशास्त्र के बीच में विवेक है। सर्वज्ञदेव की वाणी को झेलकर गणधरादि संतों ने जिनकी रचना की, ऐसे वीतरागी शास्त्रों को पहिचान के इनका दान व प्रचार करें। परंतु मिथ्यादृष्टि के रचे हुए, तत्वविरुद्ध, कुमार्ग के पोषक ऐसे कुशास्त्रों को वह श्रावक माने नहीं, इनका दान व प्रचार नहीं करे, अनेकांतमय सत्शास्त्र को पहचान कर इनका ही दानादि करे।

(१०४) संयोग की व अशुद्धता की रुचि को (अर्थात् उसमें धर्मबुद्धि को) छोड़कर, अपने चिदानंदस्वभाव की दृष्टि-रुचि-प्रीति करना, वह सम्यग्दर्शन है; वह धर्म की पहली चीज़ है; इसके बिना पुण्य बँध सकता है, परंतु इनमें कल्याण नहीं होता, मोक्षमार्ग नहीं होता। जो पुण्य की रुचि में अटक गया, पुण्य के विकल्प में कर्तृत्वबुद्धि से तन्मय होकर रुक गया, उसे पुण्य के साथ-साथ मिथ्यात्व का पाप भी बँधता है।

(१०५) पंडित श्री टोडरमलजी मोक्षमार्गप्रकाशक के छट्ठे अध्याय में कहते हैं कि—'जैनधर्म में तो यह आम्नाय है—पहले बड़ा पाप छुड़ाय पीछे छोटा पाप छुड़ाय, सो इस मिथ्यात्व को सप्त व्यसनादिकतैं भी बड़ा पाप जानि पहले छुड़ाया है। तातैं जे पाप के फलतैं डरें हैं, अपने आत्मा को दु:खसमुद्र में न डुबाया चाहै हैं, वे जीव इस मिथ्यात्व को अवश्य छोड़ो। निंदा-प्रशंसादिक के विचारतें शिथिल होना योग्य नहीं है।'

(१०६) 'सम्यक्त्व तो बहुत ऊँची भूमिका में होता होगा, पहले तो व्रत-संयम चाहिये'—ऐसा माननेवाले को जिनमत के क्रम की पहिचान नहीं है। जिनमत में तो ऐसी परिपाटी है कि पहले सम्यक्त्व हो, बाद में व्रत हो। ऐसा पंडित टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है। चौथे गुणस्थान में सम्यग्दर्शन होता है और अपने को स्वानुभव से इसकी नि:शंक खबर पड़ती है।

(१०७) सम्यक्त्व की तो बात ही नहीं करते और इसके बिना मुनि हो जाने की बात जो करते हैं, वे जैनधर्म के क्रम का भंग करते हैं। मुनिपद लेने का क्रम तो यह है—'पहले तत्त्वज्ञान होय, पीछै उदासीन परिणाम होय, परिषहादि सहने की शक्ति होय, तब वह स्वयमेव मुनि भया चाहै, तब श्रीगुरु मुनिधर्म अंगीकार करावैं। यह कौन विपरीतता है जो तत्त्वज्ञानरहित विषयकषायासक्त जीव तिनको माया करि वा लोभ दिखाय मुनिपद देना, पीछै अन्यथा प्रवृत्ति करावनी। सो यह बड़ा अन्याय है।' दो सौ वर्ष पहले के बड़े पंडित श्री टोडरमलजी का यह कथन है।

(१०८) कोई कहते हैं कि 'सम्यक्त्व होने की खबर नहीं पड़ती; वह केवली जानें।' परंतु यह बात झूठ है। सम्यक्त्व होने पर जीव को स्वयं अपूर्व अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है, एवं आत्मपरिणति में नि:शंकता हो जाती है। 'मेरा स्वभाव मेरी प्रतीति में व अनुभूति में आता ही है, और परभाव का एक अंश भी मुझे मेरे स्वभावरूप नहीं दिखता।' ऐसी आत्मप्रतीति के बिना चतुर्थ गुणस्थान का भी धर्म नहीं होता, तब पंचम गुणस्थान के श्रावकधर्म की बात तो दूर रही।

(१०९) कोई ऐसा कहे कि 'अविरत सम्यग्दृष्टि को आत्मा के अतीन्द्रिय सुख की प्रतीति तो होती है, परंतु उस अतीन्द्रिय सुख का आस्वादन (अनुभव) बिल्कुल नहीं होता, तो ऐसा कहनेवालों को न तो सम्यक्त्व की खबर है, न अतीन्द्रिय सुख की। अतीन्द्रिय सुख के

अंश का प्रगट अनुभव हुए बिना इसकी सच्ची प्रतीति हो नहीं सकती। अंश के अनुभवपूर्वक ही पूर्णसुख की प्रतीति हो सकती है। जिसने अतीन्द्रिय सुख का कुछ भी स्वाद नहीं चखा, उसको इन्द्रियसुख में से सुखबुद्धि कैसे छूटेगी ? और इसके बिना सम्यक्त्व कैसा ? इन्द्रियसुख का अंश सम्यक्त्व के साथ सदैव (अविरतदशा में भी) वर्तता है। और पंचम गुणस्थानवर्ती है चाहे वह तिर्यंचपर्याय में भी क्यों न हो ? तो उसे अतीन्द्रिय सुख बहुत ही बढ़ गया है। सर्वार्थसिद्धि के देवों के विषयातीत सुख से भी अधिक सुख श्रावक को होता है।

(११०) ऐसी श्रावकदशा सम्यक्त्व के बिना नहीं हो सकती। क्योंकि मिथ्यात्व को छोड़े बिना अव्रत या कषायादि छूटते नहीं। मिथ्यात्व के छूटते ही अनंत बंधन एक ही क्षण में टूट जाता है। किंतु जिसे मिथ्यात्व छोड़ने की दरकार नहीं है, उसे अव्रतादि कैसे छूटेगा ? आत्मा क्या है, इसकी पहिचान के बिना किसमें स्थिर रह करके व्रत करेगा ? सम्यक्त्व द्वारा चिदानंद स्वरूप का अनुभव करके उसमें कुछ स्थिरता हो, तब दो कषाय चौकड़ी का अभाव होकर के श्रावकधर्म प्रगटता है।

विविध वचनामृत

[चर्चा एवं प्रवचनों से]

सिद्ध परमात्मा की पंक्ति में....

आत्मा को भूलकर पर की महिमा कहना, सो अज्ञान है; और आत्मस्वरूप को निर्विकल्प श्रद्धा-ज्ञानरूप समाधि में देखना, वह अपूर्व ज्ञानप्रकाश है। ऐसा ज्ञान हो, वहाँ संसार बंधन क्षणमात्र में छूट जाता है। आत्मा सिद्ध भगवान जैसे अचिंत्य सामर्थ्य से भरपूर है; उसे देखते ही अनादि की कर्म धारा टूट जाती है। अनंत सिद्ध परमात्माओं की पंक्ति में बिठाया जा सके, ऐसा यह आत्मा है। ऐसे आत्मा में जहाँ दृष्टि की, वहाँ भीतर स्वयं पूर्णानंद से भरपूर भासित होता है और बाह्य में मानों कुछ भी न हो—इसप्रकार शून्य भासित होता है। चैतन्य में दृष्टि डालने पर एक चैतन्य समुद्र के शांतरस के सिवा अन्य कुछ भी दिखायी नहीं देता। ऐसे आत्मा को अंतर में देखने की क्रिया, वही महान अपूर्व क्रिया है।

आत्मा को जानने में तत्पर हो—

आत्मा कहाँ रहता होगा? इस शरीर में स्थित होने पर भी वह शरीर को स्पर्श नहीं करता; शरीर के लक्षण से उसका लक्षण भिन्न का भिन्न ही रखता है। आत्मा सदा चैतन्य लक्षणरूप से विद्यमान है, जड़ शरीररूप कभी नहीं हुआ है। अरे, शरीर में विद्यमान ऐसे अपने आत्मा को हे जीव! तू स्व-संवेदन से क्यों नहीं जानता? बाह्य प्रपंच तो बहुत जानता है, फिर अपने आत्मा को क्यों नहीं जानता? दूर-दूर की प्रयोजनरहित बातें जानने को दौड़ता है, तो यहाँ अपने में ही विद्यमान अपने आत्मा को जानने में बुद्धि लगा। वह अत्यंत प्रयोजनरूप है। अरे, तू दूसरों का तो ज्ञान करता है और अपना नहीं करता! वह कैसा ज्ञान कि जो स्वयं अपने को न देखे! इसलिये हे भाई! आत्मा को जानने में तत्पर हो।

आनन्द का वेदन

आत्मद्रव्य की अपार शक्ति है; उसके स्वरूप में अपार आनंद और अपार शांति भरी है; परंतु उसे देखे तब उसका वेदन हो। उस शांति का वेदन आकुलता रहित है; इन्द्रियजनित सुख-दुःख उसमें नहीं हैं, उसमें आकुलता नहीं है; उसमें मन का भी व्यापार नहीं है। आत्मा ऐसे शांत-अनाकुल इन्द्रियातीत सुख से भरपूर है, उसे हे भव्य! तू जान! उसे जानने से ही चार

गति के दु:खों से छुटकारा होगा और उसे जानते ही पूर्वकाल में कभी जिसका अनुभव नहीं किया है, ऐसे किसी अपूर्व आनंद का अनुभव होगा।

आत्मा का मुख्य धर्म

आत्मा का मुख्य धर्म 'ज्ञान' है। धर्म तो आत्मा में अनंत हैं, परंतु उनमें ज्ञानधर्म द्वारा आत्मा अन्य समस्त द्रव्यों से भिन्न अपने यथार्थ स्वरूप से पहिचाना जाता है, इसलिये उसे 'प्रधान' कहकर ज्ञान को आत्मा का लक्षण कहा है। इसलिये आत्मा को 'ज्ञानस्वरूप' कहकर पहिचान करायी है। ज्ञान के साथ अस्तित्व, वस्तुत्व, अमूर्तत्व आदि अन्य अनंत धर्म हैं, परंतु उन अस्तित्व आदि धर्मों के निरूपण से आत्मा पर से भिन्न प्रतीति में नहीं आता, क्योंकि जड़-अचेतन द्रव्यों में भी अस्तित्व आदि धर्म विद्यमान हैं।

ज्ञान परिणमन में अनंत धर्म

'ज्ञान, सो आत्मा'—ऐसा लक्ष में लेकर ज्ञानमय परिणमन करने से उस ज्ञानपरिणमन में आत्मा के अन्य अनन्त धर्म भी साथ ही आ जाते हैं। ज्ञान स्वयं स्वसमयरूप होकर परिणमित हुआ, वहाँ उसमें सम्यक्त्व, आनंद, चारित्र, अस्तित्व, अमूर्तत्वादि सभी धर्मों का निर्मल परिणमन समाविष्ट है। ज्ञान स्वयं अपने में स्थिर होकर परिणमित हुआ, वहाँ उसमें मोक्षमार्ग आ गया; और चिन्ता का जाल सब अदृश्य हो गया।

'ज्ञान में राग नहीं और राग में ज्ञान नहीं'

ज्ञान के परिणमन में ज्ञान के साथ अन्य धर्म आते हैं, परंतु ज्ञान के परिणमन में रागादि विकार नहीं आते; ज्ञान के परिणमन में शरीरादि की क्रियाऐं नहीं आतीं। ज्ञान आत्मा के सर्व धर्मों में व्याप्त है, परंतु आत्मा से बाहर शरीरादि की क्रिया में या राग में ज्ञान नहीं रहता; तथा ज्ञान में परभाव नहीं रहते। ज्ञान तो स्व समय है और रागादि पर भाव तो पर समय है। स्व समय में पर समय नहीं है और पर समय में स्व समय नहीं है; इसलिये ज्ञान में राग नहीं है और राग में ज्ञान नहीं है।

ज्ञान की शक्ति

ज्ञान की शक्ति ऐसी है कि स्व सन्मुख होकर पूर्ण शुद्ध आत्मा को स्वसंवेदन में लेता है। स्वोन्मुख होकर जिसने शुद्धात्मा को ध्येयरूप किया, वह शुद्धनय है, वह ज्ञान ही है। शुद्धनय और उसका विषय—वे दोनों एकाकार हुए हैं, उसी को 'शुद्धनय' कह दिया है। ऐसे आत्मा

को प्रतीति में—अनुभव में लेने की शक्ति ज्ञान की ही है, राग में शक्ति नहीं है। जहाँ ज्ञान शुद्धनयरूप परिणमित होता हुआ, अंतरोन्मुख हुआ, वहाँ समस्त परद्रव्यों की चिंता लुप्त हो गई, विकल्प शांत हो गये और आनंद का वेदन रहा। ऐसे सामर्थ्यवाला ज्ञान, वह आत्मा का लक्षण है—वह आत्मा का धर्म है और उसी में आत्मा की प्रसिद्धि है।

प्रगट परमात्मा और गुप्त परमात्मा

सिद्ध भगवान जैसे प्रगट परमात्मा हैं, वैसा ही यह आत्मा अप्रगट परमात्मा है। उस अप्रगट परमात्मा के ध्यान द्वारा आत्मा प्रगट परमात्मा होता है। आत्मशक्ति में छिपा हुआ परमात्मपना उसके ध्यान द्वारा प्रगट होता है। धर्मात्मा के ध्यान में अपूर्व आनंदसहित परमात्मा प्रगट होता है।

तुझमें परमात्मपना है, उसकी महत्ता कर और संसार की महत्ता उड़ा दे। चैतन्य के स्वभाव से अधिक महिमावान इस जगत में कोई नहीं है। तीर्थंकर जैसे महापुरुष भी इस चैतन्य स्वभाव को ही महान समझकर उसका ध्यान करते हैं। उसके ध्यान द्वारा ही अरिहंतपद और सिद्धपद प्रगट होता है।

तू अपने में ही नत हो!

जो चैतन्यस्वभाव की ओर झुका, उसे जगत की कोई चिन्ता नहीं है। भाई, तू जगत की चिन्ता में लगा रहा, लेकिन स्वयं अपनी चिन्ता नहीं की। अपने अचिंत्य चैतन्य निधान को तू भूल गया। जगत में साररूप तेरा आत्मा है; तू कर्म को या विकल्प को न देख, परंतु उन सबको देखनेवाला कौन है—उसे देख। चैतन्य में नमन कर-करके ही जीव परमात्मा हुए हैं। जगत जिन्हें नमन करे, ऐसे गणधरादि पुरुष भी चैतन्य में ही नत हुए हैं और ऐसा चैतन्यस्वभाव तुझमें है; इसलिये तू अपने में ही नत हो; अपने आत्मा को श्रद्धा-ज्ञान में लेकर उसी को तू ध्या... उसके ध्यान द्वारा एक क्षण में कर्म बंधन टूट जायेगा और तेरा परमात्मस्वरूप तुझे प्रगट दिखायी देगा।

परमात्मा तेरे पास ही है, उससे लौ लगा

तुझे अपना परमात्मपद कहीं बाह्य में ढूँढ़ने जाना पड़े, ऐसा नहीं है। जहाँ यह शरीर दिखायी देता है, वहीं परमात्मा निवास कर रहा है। जहाँ-जहाँ तू जाता है, वहीं-वहीं परमात्मा तेरे साथ ही साथ है; उसे तू क्यों नहीं पहिचानता? तेरा परमात्मा तुझसे कहीं बाहर नहीं है, वह

तुझमें ही वास करता है, उसे अंतर में देख। अरे, जिस परमात्मा को देखते ही पूर्व काल में किये हुए कर्म क्षण भर में टूट जाते हैं, ऐसा परमात्मा तू स्वयं ही है, इसमें किंचित् फेर नहीं है। ज्ञान को अंतर में स्थिर करनेरूप जो परम निर्विकल्प समाधि—उसके द्वारा पूर्व काल में बाँधे हुए कर्म चूर्ण हो जाते हैं; इसलिये अज्ञान से बाँधे हुए कर्म आत्मज्ञान से ही टूटते हैं। निजस्वरूप को जहाँ देखा, वहाँ कर्मों का चूरा! जिसप्रकार सिंह की गन्ध आते ही हिरन भाग खड़े होते हैं, उसीप्रकार चैतन्य भगवान शार्दूलसिंह जहाँ ज्ञानचक्षु खोलकर जागृत हुआ, वहाँ कर्मरूपी हिरन भागे। आत्मा में कर्म कैसे? अहा, मुझमें ही परमात्मपद भरा है—ऐसा जो देखे, उसे जगत के कौन से विषय या वैभव ललचा सकते हैं? परमात्म पद से बड़ा जगत में कौन है कि जो उसे ललचाये? परमात्मपद के अचिंत्य आत्मवैभव को जिसने अपने में देख लिया, उसके चित्त में जगत के किसी पदार्थ की महिमा नहीं रहती। परमात्मपद का प्रेम जागृत हुआ, वहाँ जगत का प्रेम रहता ही नहीं। हे जीव! संत पुनः-पुनः कहते हैं कि परमात्मा तेरे पास ही है, उसका प्रेम कर। ऐसे शुद्धनय के बल से राग के साथ की एकता तोड़कर आत्मा स्वसमयरूप परिणमित हुआ, वही मोक्षमार्ग है।

मोक्ष की वंश परम्परा

तेरी सच्ची वंश परम्परा तो यह है कि तू परमात्मपद की साधना करे। तेरी वंश परम्परा में पूर्वकाल में अनंत जीव केवलज्ञान प्राप्त कर-करके मोक्ष पहुँचे हैं। पहले अनंत बार तूने मनुष्यभव धारण किये, उसमें तेरे पिता केवली होकर मोक्ष पधारे... और ऐसे अनंत पिता मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं; उसीप्रकार तेरे अनंत भवों में अनंत पुत्र हुए और वे पुत्र तेरी आज्ञा ले-लेकर मुनिदशा धारण करके मोक्ष में पहुँच गये... ऐसे अनंत पिता और अनंत पुत्र मोक्ष प्राप्त कर चुके हैं... वे सब इसीप्रकार ज्ञानस्वरूप के अनुभव से स्वसमयरूप होकर ही मोक्ष को प्राप्त हुए हैं और तू भी इसी मार्ग से मोक्ष को साध... यही तेरा सच्चा वंश है। चैतन्य का वंशवृक्ष तो ऐसा है कि उसमें केवलज्ञान और सिद्धपद के ही फल आते हैं। चैतन्य वृक्ष में विकार नहीं फलता। अहा ऐसे, ज्ञानस्वरूप को साधकर मोक्ष प्राप्त करना वह अरिहंतों तथा सिद्धों के वंश की टेक है। धर्मी कहता है कि मैं तो तीर्थंकर के कुल का हूँ; इसलिये जिस मार्ग पर तीर्थंकर चले उसी मार्ग को साधना मेरी टेक है। तीर्थंकरों के कुल की, सम्यक्त्वी संतों की यह टेक है कि शुद्धनय द्वारा स्वसन्मुख होकर आत्मा को साधें।

मैं कौन हूँ ?

संसार की चारों गतियों में दु:ख है और आत्मज्ञान बिना अभी तक जीव ने अकेला दु:ख ही प्राप्त किया है... अब मैं उन दु:खों से छूटने तथा परम आनंद की प्राप्ति करने के लिये अपने परम आत्मस्वरूप को समझूँ—ऐसी जिसे जिज्ञासा हुई, वह आत्मस्वरूप का निर्णय करता है। मेरा अस्तित्व कैसा है, मेरे अस्तित्व में कितना सामर्थ्य है ? पर में तो मेरा अस्तित्व नहीं है। तो क्या जो रागादि भाव दु:खरूप हैं, उनके जितना ही मेरा अस्तित्व है ? नहीं; मेरा अस्तित्व उस राग की वृत्ति से पार, दु:खरहित, नित्यस्थायी है कि जिसमें पूर्ण सुख और पूर्ण ज्ञान का सामर्थ्य भरा है; उसके सेवन से ही केवलज्ञान और सिद्धपद प्रगट होता है। मेरा स्वभाव सुख से भरपूर है, उसके सेवन से ही सुख का अनुभव प्रगट होता है। धर्मी जीव ऐसे सम्यक् निर्णय द्वारा स्वसंवेदनपूर्वक अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव करता है।

आध्यात्मिक पद

रचयिता – एक आत्मार्थी, गौहाटी

जियरा स्व से नेह लगाय, जियरा स्व से नेह लगाय।
पर से सुख दुख मान रियो ओ झूठो भरम लगाय॥ जियरा०॥
है अनंत गुण को धणीसरे चेतन शुद्ध स्वरूप॥ तुम्हरो...॥
चेतन स्व में तो राग हटे सब हो जावे शिव भूप॥ जियरा०॥
पुण्य पाप है भाव विकारी करे करम को बन्ध,
चिदानन्द की ओर झुके तो कट जावे भव फन्द॥ जियरा०॥
करम बिचारे जड़ अज्ञानी, करे तू झूठो रोष,
खुद की थारी भूल न समझे दे दूजा ने दोष॥ जियरा०॥
उपादान की लायकात है, पर निमित्त कहलाय।
शुद्ध स्वभाव सम्हाल 'भंवर' फिर परमातम पद पाय॥ जियरा०॥

सम्यक् अनेकांत

अनेकांत भी सम्यक् एकांत ऐसा आत्महित की प्राप्ति के सिवा किसी अन्य हेतु से उपकारी नहीं है।

एक वस्तु में वस्तुपने की सिद्धि करनेवाली अस्ति-नास्ति आदि स्वरूप परस्पर-विरुद्ध तथा सापेक्ष दो शक्तियों का प्रकाशित होना 'अनेकांत' है। प्रत्येक वस्तु स्वचतुष्टयरूप है—'स्व' से है और 'परचतुष्टयरूप' नहीं है, पर के अस्तित्व के कारण 'नहीं' है।

एक वस्तु (द्रव्य) के अपने द्रव्य-गुण-पर्याय और प्रत्येक समय की उत्पाद-व्ययरूप क्रमभावी पर्याय के अनंत अविभागी प्रतिच्छेद, वह प्रत्येक अंश सत्तात्मक होने से (चाहे नित्य सत् हो या अनित्य सत्) सब अपनेरूप ही अवस्थित हैं, पररूप नहीं हैं, पर से नहीं हैं, पर के आधार से नहीं हैं, कारण कि प्रत्येक सदा अपने रूप ही हैं, कोई भी द्रव्य अंशमात्र भी कभी भी पररूप (परद्रव्य-क्षेत्र-काल और परभावरूप) नहीं है। हर एक द्रव्य का अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व आदि सब गुण अपने से ही है, 'पर के कारण से भी है' ऐसा नहीं है।

निरंतर उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यसहित ही हर एक द्रव्य होने से अपना कार्य (क्रिया) स्वयं अपने से है, पर से नहीं है। 'पर' तो पररूप निमित्तमात्र है। निमित्त से कार्य नहीं होता, किंतु निमित्त का ज्ञान कराने के लिये कार्यकाल में कौन निमित्त कहा जाता है, इसका व्यवहारनय द्वारा कथन होता है।

हर एक वस्तु में (द्रव्य में) अपने-अपने गुण (त्रैकालिक शक्ति) अनंत संख्या सहित नित्य ही हैं और उनकी क्रमभावी पर्यायें-उत्पाद-व्ययरूप काय भी स्वद्रव्य के आश्रित चालू ही रहती है, ऐसा अबाधित नियत 'स्व' से है 'पर' से नहीं, इसलिये एक द्रव्य का अन्य द्रव्य कर्ता-भोक्ता या स्वामी नहीं बन सकता (भ्रम से कोई मान सकता है।) एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ भी नहीं कर सकता, न अन्य को परिणत कर सकता, न करा सकता, न प्रेरक बन सकता है; न पर में लाभ-हानि कर सकता है, न उस पर प्रभाव डाल सकता है। वास्तव में पर्याय में भी हर एक वस्तु स्वसहायरूप होने से उसकी कोई भी सहायता नहीं कर सकता, उसे मार या जिला भी नहीं सकता, क्योंकि प्रत्येक नित्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय स्व सत्तात्मक और अपना ही परिणमन करनेवाली है। एक समय के लिये भी 'पररूप' नहीं होती, तब पर का

काम कैसे करे ? मात्र लोक व्यवहार में पर का कर्तापन-स्वामीपन माना जाता है, जो परमार्थ नहीं है। तत्त्वदृष्टि से पर के कर्तापनादिरूप व्यवहार झूठा ही है।

प्रत्येक वस्तु निरंतर अपना ही काम कर रही है, इसलिये 'पररूप' नहीं होती, न पर का कुछ करने जाती है, ऐसी प्रत्येक द्रव्य की तथा उनके गुण-पर्यायों की स्वतंत्रता अनंत ज्ञानियों ने पुकार-पुकार कर कही है।

प्रश्न—ऐसा जानने से क्या लाभ ?

उत्तर—पराश्रय की श्रद्धा छूटकर अपूर्व स्वाश्रय होता है। 'संयोग से कार्य होता है' -ऐसी पराश्रय की श्रद्धा-जो अनादिकाल से पर में एकत्व बुद्धिरूप मिथ्या प्रतिभास का काम कर रही है-उस दु:खदाता श्रद्धा से छूटकर स्वाश्रय दृष्टि के द्वारा भूतार्थस्वरूप का ग्रहण, स्व-पर की स्वतंत्रता का ज्ञान; सर्वज्ञस्वभावी अपनी आत्मा की पहिचान, महिमा और सत्य समाधानमय शांति का सच्चा उपाय प्राप्त होता है। यही इस तत्त्वज्ञान का अपूर्व लाभ है। असलियत को जाननेवाले, स्व-पर प्रकाशक ज्ञान को स्वयं प्राप्त किया होने से इस उपाय को बतलानेवाले सच्चे देव-शास्त्र और गुरु की श्रद्धा, ज्ञान और विनय भी साधक को होता है।

किंतु उसको ऐसा मिथ्या अनेकांतरूप संशयवाद नहीं होता कि "कभी राग से आत्महित हो, कभी वीतरागभाव से भी हो, कभी व्यवहार से—निमित्त से—परद्रव्यादिक से अपना कार्य हो और कभी 'स्व' से कार्य हो।" ऐसे संशयवाद का नाम 'मिथ्याज्ञान' ही है; स्वाश्रय निश्चयरूप वीतराग भाव से ही आत्मकल्याण की उत्पत्ति-वृद्धि-स्थिति और पूर्णता होती है; पराश्रय से तो बंधन ही होता है। अत: शुभाशुभराग से आस्रव और बंधतत्त्व का ही होना है, शुद्धमार्गरूप आत्मकल्याण का होना कभी नहीं है। आत्मा जिस अपेक्षा से नित्य है, उस अपेक्षा से नित्य ही है; अनित्य नहीं है; उसीप्रकार भूतार्थ नित्य स्वतत्त्व के आश्रय से ही वीतरागभावरूप धर्म की शुरुआत-उत्पत्ति-वृद्धि होती है, पराश्रय या निमित्तादि पर के आलंबन से वीतरागता नहीं होती, यह 'सम्यक् अनेकांत' का नियम है। अन्य के द्वारा कहना तो कार्य होने पर उचित निमित्त अभावरूप या भावरूप कौन होता है, ऐसा बतलानेवाला व्यवहार कथन है। किंतु 'ऐसा भी है, ऐसा भी है' इत्यादि अनिश्चितरूप संशयरूप रहना; व्यवहार का अर्थ निश्चयरूप मानना महा विपरीत ही है।

लहे जिय परमाणु से शिक्षा

हर समय अनंत परद्रव्य शिक्षा दे रहे हैं कि हम नित्य परिणामी द्रव्य हैं। हम अपनेरूप हैं, पररूप कभी नहीं हैं। अपने-अपने कार्यक्षेत्र में क्रियारत हैं। हम अपने गुण-पर्याय के स्वामी हैं, ऐसी अनन्य शरणता के कारण हमारा अस्तित्व हमारे कारण है, पर के कारण से हमारा अस्तित्व नहीं है। अत: हमारे प्रति कर्तृत्व-ममत्व, इष्ट-अनिष्टबुद्धि करेंगे तो दु:खी होंगे। यदि भेदविज्ञान द्वारा ज्ञेय स्वभाव और ज्ञान स्वभाव को स्वतंत्रतया देखेंगे तो 'मैं ज्ञाता स्वभावी हूँ' ऐसा सम्यक् प्रतिभास कर सुखी होंगे।

प्रत्येक वस्तु कहती है कि वह स्वयं अपनी मालिक है, फिर भी आप दूसरों के मालिक बनोगे तो हाय-हाय करके दु:ख ही दु:ख प्राप्त करोगे। यदि सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वज्ञान द्वारा निज स्वरूप की सम्हाल करेंगे तो स्वसन्मुख ज्ञातापन की अपूर्व धीरज-शांति मिलेगी—जिसमें सच्चा समाधान होगा; विषमता का आदर नहीं होगा।

सम्यग्ज्ञान क्या शिक्षा देता है:—

'सर्व जीव है ज्ञानमय' ऐसा जो समभाव।
वह सामायिक जिन कहे, प्रगट करे भवपार॥९९॥
'सर्व जीव है ज्ञानमय' जाने समता धार।
वह सामायिक जिन कहे हो आस्रव से पार॥

भूतार्थदर्शी ज्ञान हमको यह शिक्षा देता है कि सर्व जीव नित्य ज्ञानमय हैं, क्षणिक आस्रवमय (मिथ्यात्व-रागादि दोषमय) नहीं हैं। अपनी निर्दोष ज्ञायक वस्तु में एकत्वबुद्धि, उपादेय की बुद्धि रखकर देखो, तो मालूम पड़ेगा कि क्षणिक दोष-दु:ख तो नष्ट होनेवाले हैं। दोष-दु:ख को जाननेवाला आत्मा दु:खरूप तन्मय नहीं हो जाता। 'वह तो जुदा, जुदा और जुदा, ज्ञाता, ज्ञाता और ज्ञाता ही है' इस महान मंत्र को याद रखें।

सहस्त्रों वर्ष के शास्त्र अध्ययन से भी एक क्षण का अनुभव अधिकता को प्राप्त करता है। जिसको भवसमुद्र से तैरना (पार होना) हो, उसको स्वानुभव की विद्या का अध्ययन करना चाहिये।

मोक्षमार्ग दो नहीं हैं और न हो सकते हैं

(लेखक—श्री रामजी माणेकचन्द दोशी)

[परमागम श्री समयसारजी तथा अन्य आध्यात्मिक ग्रन्थों के प्रमाणों सहित]

मोक्षमार्ग दो नहीं हैं, किंतु उसका प्ररूपणा एवं निरूपण ही दो प्रकार का है, यह तथ्य लोगों गले उतारने के लिये परमागम 'श्री समयसारजी' तथा अन्य आध्यात्मिक ग्रंथों के प्रमाणों सहित नीचे प्रयास किया जाता है; आशा है पाठकगण इस यथार्थता को समझने के लिये प्रयत्न करेंगे। इस तथ्य को समझाने के लिये नीचे क्रमशः भगवद अमृतचन्द्राचार्य के कलश संख्या १९, २०, ३१, ५५, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८ और १०९ का का प्रयोग किया जाता है। साथ में अन्य ग्रंथों के भी प्रमाण दिये जायेंगे। उन सबको लक्ष्य में लेते हुए 'मोक्षमार्ग दो नहीं, एक ही है' इस सारभूत तथ्य को ग्रहण करेंगे।

प्रमाणों का क्रम

१- श्री समयसारजी के 'जीव-अजीव अधिकार' नामक प्रथम अधिकार की गाथा १६ का कलश १९ सिद्ध करता है कि मोक्षमार्ग दो नहीं किंतु एक है—

आत्मनश्चिंचतयैवालं मेचकामेचकत्वयोः।
दर्शनज्ञानचारित्रैः साध्यसिद्धिर्न चान्यथा॥१९॥

अर्थ—यह आत्मा मेचक-भेदरूप अनेकाकार है तथा अमेचक-अभेदरूप एकाकार है, ऐसी चिंता से बस हो। साध्य-आत्मा की सिद्धि तो दर्शन, ज्ञान और चारित्र—इन तीन भावों से ही होती है, अन्य प्रकार से नहीं, यह नियम है॥१९॥

यहाँ 'एक ही मोक्षमार्ग है, दो नहीं' ऐसा बताने के लिये 'न चान्यथा' यह स्पष्ट कथन किया है।

२- कलश २०

कथमपि समुपात्तत्रित्वमप्येकताया
अपतितमिदमात्मज्योतिरुद्गच्छदच्छम्।
सततमनुभवामोऽनन्तचैतन्यचिह्नं
न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः॥२०॥

अर्थ—आचार्य कहते हैं कि **इस आत्म ज्योति का हम निरंतर अनुभवन करते हैं।** यह आत्मज्योति अनंत-अविनश्वर चैतन्य-चिह्नवाली है, क्योंकि उसके अनुभव के बिना **अन्य प्रकार से साध्य-आत्मा की सिद्धि नहीं होती।** वह आत्मज्योति ऐसी है कि जिसने किसी प्रकार से त्रित्व अंगीकार किया है, **तथापि जो एकत्व से च्युत नहीं हुई** तथा जो निर्मलता से उदय को प्राप्त हो रही है।

मोक्षमार्ग एक ही है, दो नहीं, यह बात श्री परमात्मप्रकाश, अध्याय १, दोहा ११८ से भी, 'सुख' के वर्णन के अवसर पर, ज्ञात होती है। वहाँ लिखा है 'तीर्थंकरदेव दीक्षा के समय जो अनंत अद्‌भुत सुख पाते हैं, वही सुख मुनिराज पाते हैं।'

श्री परमाध्यात्मतरंगिणी, पृष्ठ २१ में इस कलशकी व्याख्या में कहा है कि—'वीप्सार्थोऽयम-तिशयेन निषेधकः। अधिकवचनं च किंचिदभीष्टं ज्ञापयत्याचार्यस्तथोपपत्त्यान्यथानुपपत्त्या चात्मनः साध्यसिद्धिर्नान्यथा, आत्मानुभवनेनैव मुक्ति प्राप्तिरिति तथोपपत्ति तदनुभवनमन्तरेण कदाचित्क्वचिदपि कस्यचित् न तत्सिद्धिरित्यन्यथानुपपत्तिः ॥२०॥

''दो बार 'न खलु न खलु' जो कलश के मूल में है, वह अत्यंत निषेध करनेवाला है। अधिक वचन भी कुछ-कुछ अभीष्ट होता है और उसे आचार्य 'तथोपपत्ति' और 'अन्यथानुपपत्ति' के द्वारा बताते हैं। आत्मा के अनुभवन से ही मुक्ति प्राप्ति होती हो, यह तो 'तथोपपत्ति' हुई और आत्मा के अनुभवन के बिना कभी भी, कहीं भी, किसी को भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती, यह 'अन्यथानुपपत्ति' है। आत्मा के साध्य की सिद्धि अन्यप्रकार से नहीं है।''

छठवें गुणस्थान में जितने अंश में प्रमाद आता है, जिसे 'व्यवहार मोक्षमार्ग कहा जाता है—वह मोक्षमार्ग का सच्चा कारण नहीं है, ऐसा बतलाने के लिये 'न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः' कहा है। इस पंचम काल के आचार्य, जो तद्‌भव मोक्षगामी नहीं थे, कहते हैं:—'हम आत्मा का निरंतर अनुभव करते हैं (सततमनुभवामोऽनंतचैतन्यचिह्नम्) और छठवें से सातवें और सातवें में से छठे गुणस्थान में हजारों बार आते जाते रहते हैं। इन दोनों गुणस्थानों में आत्मज्योति का निरंतर अनुभव करते हैं।

तथा अचार्यदेव प्रवचनसार गाथा ३३ में कहते हैं:—'जैसे केवली भगवान आत्मा को अनुभवते हैं, वैसे ही हम भी अनुभवते हैं।'

३— कलश ३१

इति सति सह सर्वैरन्य भावैर्विवेके
स्वयमयमुपयोगो विभ्रदात्मानमेकम्।
प्रकटितपरमार्थैं दर्शनज्ञानवृत्तैः
कृतपरिणतिरात्माराम एव प्रवृत्तः ॥३१॥

अर्थ—इस तरह पूर्वकथित रीति से भावकभाव और ज्ञेयभावों से भेदज्ञान होने पर जब सर्व अन्य भावों से भिन्नता हुई, तब यह उपयोग स्वयं ही अपने से अपने एक आत्मा को ही धारण करता हुआ, जिनका परमार्थ प्रगट हुआ है, ऐसे दर्शन-ज्ञान-चारित्र से जिसने परिणति की है ऐसा, अपने आत्मारूपी बाग (क्रीड़ावन) में प्रवृत्ति करता है, अन्यत्र नहीं जाता है।

श्री जयसेनाचार्य गाथा ३० की टीका में कहते हैं—'ततोदधिखण्ड शिखिरिणीवत् व्यवहारेणैकत्वेऽपि शुद्धनिश्चयनयेन मम स्वरूपं न भवंतीति परद्रव्यं प्रति निर्ममत्वोस्मि।'

अर्थ—दही-शक्कररूप श्रीखण्ड की तरह **व्यवहार से एकपना होने पर भी शुद्धनिश्चयनय से ये मेरे स्वरूप होते नहीं,** इसलिये परद्रव्य के प्रति मुझे निर्ममत्व है।

यहाँ व्यवहार से जो जीव का कहा है, वह जीव का सच्चा स्वरूप नहीं है, किंतु 'परमार्थ मोक्षमार्ग' ही जीव का स्वरूप है, ऐसा समझना। कलश में 'परमार्थैः' शब्द है, उससे 'दो मोक्षमार्ग नहीं हैं किंतु एक ही है' यह विशेष दृढ़ किया है। 'कर्ताकर्म अधिकार' की गाथा ८६ का कलश ५५।

४—

आसंसारत एव धावति परं कुर्वेऽहमित्युच्चकै-
र्दुर्वारं ननु मोहिनामिह महाहंकाररूपं तमः।
तद् भूतार्थपरिग्रहेण विलयं यद्येकवारं व्रजेत्
तत्किं ज्ञानघनस्य बन्धनमहो भूयो भवेदात्मनः ॥५५॥

अर्थ—इस जगत में मोही (अज्ञानी) जीवों का 'परद्रव्य को मैं करता हूँ' ऐसा परद्रव्य के कर्तृत्व का महा अहंकाररूप अज्ञानांधकार—जो अत्यंत दुर्निवार है—अनादि संसार से चला आ रहा है। आचार्य कहते हैं कि अहो! परमार्थनय का अर्थात् शुद्ध द्रव्यार्थिक अभेदनय का ग्रहण करने से यदि वह एकबार भी नाश को प्राप्त हो तो ज्ञानघन आत्मा को पुनः बंधन कैसे

हो सकता है ? (जीव ज्ञानघन है, इसलिये यथार्थ ज्ञान होने के बाद ज्ञान कहाँ जा सकता है ? और जब ज्ञान नहीं जाता, तब फिर अज्ञान से बंध कैसे हो सकता है ?)

इस कलश पर से निम्न फलितार्थ निकलते हैं:—

१— 'परद्रव्य मैं कुछ कर सकता हूँ' ऐसा परद्रव्य का कर्तापना स्वयं महा अहंकाररूप अज्ञानान्धकार है और वह अनादि से चला आ रहा है।

२— आत्मा के आश्रय बिना उस महा अहंकार का अभाव नहीं होता।

३—'परमार्थज्ञान' के साथ अविनाभावरूप 'दर्शन' और 'चारित्र' गुणस्थानानुसार होता ही है।

४—व्यवहार पराश्रित होने से 'व्यवहार मोक्षमार्ग' का कारण है। **निश्चय स्वाश्रित होने से निश्चय मोक्षमार्ग ही एक सच्चा मोक्षमार्ग है।**

५—'महाहंकार' का अर्थ 'अनंतानुबंधी मान' है। श्री परमाध्यात्मतरंगिणी, कलश ५१ में कहा है—''पुद्गल सर्वथा अचेतन है। किसी भी देश, किसी भी काल में कर्म के कर्तापने का अभाव होने से आत्मा (जीव) कर्म या अन्य किसी पुद्गल की पर्याय को नहीं करता है।''

(क्रमशः)

क्षेत्र एक : भाव में महान अंतर

जहाँ अनंत सिद्ध हैं, उसी स्थान पर अनंत निगोद हैं।

सिद्धों को उत्कृष्ट सुख है, निगोदियों को अनंत निकृष्ट दुःख।

सिद्धों का सुख अतीन्द्रिय है, उन्हें इन्द्रिय द्वारा ज्ञान नहीं होता।

निगोदिया का दुःख भी अतीन्द्रिय है, उसे भी इन्द्रिय ज्ञान द्वारा उसका ख्याल नहीं होता।

सिद्धों के बाहर का कोई संयोग सुख का कारण नहीं है।

निगोदिये के भी बाहरी संयोग दुःख का कारण नहीं है।

सिद्ध अपने भाव ही से सुखी है और निगोदिया अपने भाव से ही दुःखी है।

एक ही जगह रहनेवाले दो जीव, किंतु दोनों के भावों में कितना अंतर!

निश्चय सम्यक्त्व से ही मोक्षमार्ग प्रारंभ होता है,

निश्चय सम्यक्त्व बिना जीव सम्यग्दृष्टि कहलाता नहीं

जिसको स्व-पर का यथार्थ श्रद्धान नहीं, परंतु जैनमत में कहे गये देव-गुरु और धर्म इन तीनों को मानते हैं तथा अन्यमत में कहे गये देवादि या तत्त्वादि को मानते नहीं, इस प्रकार केवल व्यवहार सम्यक्त्व द्वारा वह सम्यक्त्वी नाम से कहा जाता नहीं। इसलिये स्व-पर भेदविज्ञानपूर्वक जो तत्त्वार्थ श्रद्धान हो, उस ही को सम्यक्त्व कहा जाता है।

वाह! देखो निश्चय-व्यवहार की कैसा स्पष्ट बात है। यथार्थ श्रद्धान से निश्चय सम्यक्त्व हो, तब ही जीव सम्यक्त्वी होता है। निश्चय सम्यक्त्व ही मोक्षमार्गरूप है; व्यवहार सम्यक्त्व तो शुभ-आस्रवरूप है, यह कोई मोक्षमार्गस्वरूप नहीं। सिद्धान्त में 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' ऐसा कहा है, उसमें निश्चय सम्यग्दर्शन की बात है। 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' यह निश्चय सम्यग्दर्शन है। भूतार्थ के आश्रित सम्यग्दर्शन कहा (समयसार, गाथा ११) उसमें और इस सम्यग्दर्शन में कोई अन्तर नहीं। ऐसा सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान से प्रगट होकर सिद्धदशा तक वहाँ भी रहता है। शुभरागरूप व्यवहार सम्यग्दर्शन कोई सिद्धदशा में होता नहीं। इसप्रकार निश्चय सम्यग्दर्शन, वही मोक्षमार्गरूप है, चौथे गुणस्थान से ही सभी जीवों को ऐसा निश्चय सम्यग्दर्शन होता है। ऐसे निश्चय सम्यग्दर्शन बिना धर्म की या मोक्षमार्ग की प्रारम्भिकता हो सकती नहीं।

आत्म वस्तु का जैसा स्वभाव है, उसीप्रकार श्रद्धान में लाना, वही सम्यक्त्व है और वही वस्तु का निजभाव है अर्थात् निश्चय है। ऐसी सम्यक्त्व की भमिका में धर्मी को वीतरागी देव-शास्त्र-गुरु की पहिचान, भक्ति, उसके प्रति उत्साह, प्रमोद, बहुमान और विनय आता है। परंतु ऐसा करके कोई जीव अकेले व्यवहार में ही संतुष्ट हो जाये और निश्चय सम्यक्त्व को भूल जावे तो उसको सम्यग्दृष्टि कहते नहीं। जो व्यवहार के साथ का साथ ही निश्चय सम्यक्त्व (शुद्धात्मा की निर्विकल्प प्रतीति) हो—(दोनों साथ ही रहे) तो ही उसका व्यवहार सच्चा है। अन्यथा व्यवहाराभास है। निश्चय श्रद्धा तो है नहीं और केवल व्यवहार के शुभराग में ही संतुष्ट हो जाता है, इसलिये वह राग को ही मोक्षमार्ग माने बिना रह नहीं सकता, इससे उसकी श्रद्धा

मिथ्या है। इसप्रकार व्यवहार के आश्रय से मोक्षमार्ग है ही नहीं, निश्चय सम्यक्त्वादि के आश्रय से ही मोक्षमार्ग है, अथवा जो निश्चय सम्यक्त्वादि है, वही मोक्षमार्ग है। व्यवहार सम्यक्त्वादि शुभरागरूप हैं, वह मोक्षमार्ग नहीं।

अरे भाई, मोक्षमार्ग तो वस्तु के स्वभाव की जाति का होता है कि इससे विरुद्ध? निश्चय सम्यक्त्व का जो भाव है, वह तो वस्तुस्वभाव के जाति का है और सिद्धदशा में भी वही भाव रहता है। व्यवहार सम्यक्त्व का जो (राग) भाव है, वह वस्तुस्वभाव को जानता नहीं परंतु विरुद्ध भाव है, सिद्धदशा में यह भाव रहता ही नहीं, ऐसी स्पष्ट और सीधी बात, जिज्ञासु होकर समझे तो तुरंत समझ में आ जाये ऐसी है। परंतु जिसको समझना न हो और वाद-विवाद ही करना हो, वह तो ऐसी स्पष्ट बात में भी कुछ न कुछ कुतर्क करेगा। क्या हो? कोई दूसरे को बलात् (जबरन) समझा सके ऐसा नहीं।

तत्त्वार्थश्रद्धान को सम्यक्त्व कहा है; 'तत्त्व' अर्थात् उस वस्तु का जैसा 'भाव' हो, ऐसा जानना चाहिये, तभी उस वस्तु को सच्ची माना कहने में आता है। जीव ज्ञानादि अनन्त स्वभाव है, वह जीव का 'भाव' है; इस अनंत शक्तिरूप भाव को भूलकर एक क्षणिक विकार भाव जितनी ही जीव की कीमत करे, तो वास्तव में उसने जीव के 'भाव' को जाना नहीं। राग से लाभ माननेवाला वास्तव में तो वह राग जितनी ही कीमत जीव की मान रहा है; इस राग के द्वारा मुझे जीव का स्वभाव मिल जायेगा—इसका अर्थ यह हुआ कि जीव के स्वभाव की कीमत राग जितनी ही उसने मानी। अपने शुद्ध स्वभाव सम्यक् भाव को नहीं जानता, अपने स्वभाव की सच्ची कीमत को वह जानता नहीं अर्थात् वह बाहर के पदार्थों और विकारी भाव को कीमती मानता है और अपने को कीमत बिना का विकारी मानने की कल्पना की है, इससे उसकी श्रद्धा 'सम्यक्' नहीं परन्तु मिथ्या है—भले ही वह शुद्ध जैन के देव-गुरु-शास्त्र को शुभराग से मानता हो और कुदेवादि को नहीं मानता हो—तो भी इतने से उसका मिथ्यात्व दूर नहीं हो सकता। भाई! तेरी अचिंत्य कीमत है, जगत में कीमती से कीमती मूल्यवान चैतन्यरत्न तू ही है, तेरी वस्तु में प्रवेश करके तेरे सच्चे भाव को—सच्चे स्वरूप को तू जान तो ही तुझे सच्च सम्यक्त्व होगा और तेरा मिथ्यात्व दूर हो। स्व-पर का भेदज्ञान तभी ही सच्चा कहने में आवे कि जो शुद्धात्मा का श्रद्धान सम्मिलित हो; देव-गुरु की पहिचान तभी ही सच्ची कहने में आती है कि जब शुद्धात्मा का श्रद्धान सम्मिलित हो। नवतत्त्व की श्रद्धा जब ही सच्ची (सम्यक्) कहने में आवे कि जब भूतार्थ स्वभाव के सन्मुख होकर शुद्धात्मा का श्रद्धान करे। केवल व्यवहार से

यह सभी करता रहे और शुद्धात्मा का श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व नहीं करे तो उस जीव को सम्यग्दृष्टि कहते नहीं। इसलिये शुद्धात्मा का श्रद्धानरूप जो निश्चय सम्यक्त्व है, वही सच्चा सम्यक्त्व है; और वही मोक्षमार्ग है—ऐसा जानना।

अंतर में अपने शुद्ध स्वभाव का अवलंबन लेकर जो प्रतीति हुई, वह सम्यक् प्रतीति का भाव स्वभाव में से आया है, वह प्रतीति स्वानुभव के जाति की है। सिद्ध भगवान की प्रतीति और छोटे में छोटे अर्थात् कि चौथे गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि की प्रतीति, इन दोनों की प्रतीति में कोई अंतर मानने में नहीं आया। जैसा शुद्धात्मा सिद्धप्रभु की प्रतीति में है, वैसा ही शुद्धात्मा समकिती की प्रतीति में है। बाहर के आश्रय से उत्पन्न हुआ व्यवहार श्रद्धा का भाव कोई सभी जीवों को एक समान नहीं होता, परंतु इससे ऐसा नहीं समझना कि यह भाव चाहे जैसा (विपरीत भी) हो। नव तत्त्व को जो विपरीत मानता हो, देव-गुरु-शास्त्र को अन्यथा मानता हो, सर्वज्ञता इत्यादि को मानता नहीं हो, ऐसे जीव को व्यवहार श्रद्धा भी विपरीत है। जिसको नव तत्त्व की, देव-गुरु-शास्त्र की और स्व-पर की भिन्नता की पहिचान नहीं, उसको तो शुद्धात्मा का श्रद्धान बहुत दूर है। यहाँ तो इन सभी के ऊपर आगे की बात बताई गई है और यह सभी करते हुए जो शुद्धात्मा की निर्विकल्प प्रतीति करे तो ही सम्यग्दृष्टि होता है, इसके बिना सम्यग्दृष्टि कहा नहीं जाता।

'शुद्धात्मा के श्रद्धानरूप ऐसा निश्चय सम्यग्दर्शन तो सातवें गुणस्थान में होता है, छट्ठे-पाँचवें-चौथे में निश्चय सम्यग्दर्शन नहीं होता'—ऐसा कोई कहता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि वहाँ मोक्षमार्ग ही नहीं होता। अरे भाई! यह तो मार्ग की बहुत विपरीतता है। चौथे-पाँचवें-छट्ठे में निश्चय बिना केवल व्यवहार से ही जो तू मोक्षमार्ग मान लेता है, इसको तो आचार्य भगवान ने 'व्यवहारमूढ़ता' कहा है। निश्चय बिना केवल व्यवहार को मोक्षमार्ग में गिनते नहीं। मोक्षमार्ग में तो सम्यग्दर्शन कहा है, वह शुद्धात्मा के श्रद्धानरूप निश्चय सम्यक्त्व है और ऐसा निश्चय सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से नियम से ही होता है, इसलिये वहाँ एकदेश मोक्षमार्ग भी गिनने में आया है।

ऐसे सम्यक्त्व के सच्चे स्वरूप को भी नहीं पहिचाने और उसमें शंका किया करे, उसने तो मोक्षमार्ग का सच्चा स्वरूप जाना ही नहीं। मोक्षमार्ग के सच्चे स्वरूप को जो समझता भी नहीं, वह उसकी साधना भी कहाँ से करेगा? उससे यहाँ मोक्षमार्ग के मूलरूप निश्चय सम्यक्त्व का स्वरूप कहा। ●●

अनन्त सामर्थ्यवान् निजात्म-द्रव्य की अपूर्व महिमा

(श्री खेमचंद भाई जे. सेठ के प्रवचन में से)

(१) विश्व में जीव अनंत हैं (इस संख्या में कभी भी हानि-वृद्धि नहीं होती)।

(२) जीवों से 'पुद्गलद्रव्य' अनंतगुने हैं।

(३) पुद्गलों से 'तीन काल के समय' अनंतगुने हैं।

(४) तीन काल के समयों से 'आकाश के प्रदेश' अनंतगुने हैं।

(५) आकाश के प्रदेशों से 'एक द्रव्य के गुण' अनंतगुने हैं। ('गुण' नाम, द्रव्य के संपूर्ण भाग में अवस्थित त्रैकालिक शक्ति का है)।

(६) इन एक-एक द्रव्य के अनंत गुणों को (द्रव्य, जाति की अपेक्षा छह होते हैं, लेकिन संख्या की दृष्टि से वे अनंत हैं) 'छह द्रव्यों की संख्या' से गुणा करने से सभी द्रव्यों के सभी गुणों की संख्या आती है, जो कि 'अनंत' होती है।

(७) इन सब द्रव्यों के सब गुणों की संख्या को तीन काल के समयों की संख्या से, जो कि अनंत है, गुणा करने से सर्व पर्यायों की संख्या होती है, वह अनंत है। (अनंत के अनंत संख्या में अनंत भेद हैं।)

(८) एक पर्याय के अनंत अविभाग प्रतिच्छेद हैं। उनके द्वारा उपर्युक्त सब द्रव्यों के सब गुणों की सभी पर्यायों की संख्या को गुणा करने से अनंतानंत अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं।

(९) उपर्युक्त सब अविभाग प्रतिच्छेदों को भी एक समय में स्पष्ट जानने का सामर्थ्य तथा उनसे भी अनंतगुने ज्ञेय हों तो उन्हें भी जानने का सामर्थ्य केवलज्ञान में है। यह केवलज्ञान एक समयवर्ती ज्ञान पर्याय है (केवलज्ञान स्वाधीन ही है, किंचित् भी पराधीन नहीं है।)

(१०) इस एक समयवर्ती ज्ञानपर्याय से ज्ञानगुण का—जो कि त्रैकालिक है—सामर्थ्य अनंतगुणा है।

(११) इस ज्ञान गुण से आत्मद्रव्य का सामर्थ्य अनंतगुणा है। क्योंकि आत्मद्रव्य ज्ञानादि अनंत गुणों का पिण्ड है।

(१२) ऐसे अनंत अपरिमित सामर्थ्य को सदा धारण करनेवाले निज आत्मद्रव्य की अपूर्व महिमा अंतर में लाकर भेदज्ञान द्वारा जो जीव उसका आश्रय करता है, उसे अवश्य सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है, फलतः जगत के अन्य पदार्थों और सभी परभावों की महिमा श्रद्धा में से निकल जाती है।

श्रुतज्ञान, केवलज्ञान के अनुसार सम्यक्तया जानता है। द्रव्य और नित्यशक्तिरूप गुण जो अनंत है—सहभावी है—अक्रम है, अक्रम को करना कैसे? और उत्पाद-व्ययरूप पर्यायें जो क्रमवर्ती ही हैं, उन्हें अक्रम में लाना कैसे? कर्तृत्व की मिथ्यावासना कैसे मिटे? कि—सर्वज्ञ स्वभावी निजभूतार्थतत्त्व को शुद्धनय द्वारा परिग्रहण करे; स्वसन्मुख ज्ञातापन में ही अपूर्व धीरज-सुख-शांति-समाधान है, ऐसे सम्यक् प्रतिभासमान हम बनें।

शासकों के सद् विचार

प्रेषक—महेन्द्र जैन 'प्रेम', आगरा (आयु १५ वर्ष)

'जीव-हिंसा नहीं करना चाहिये और न पशुओं का बलिदान। जीवित प्राणी दूसरे प्राणी का भक्षण न करे। मेरे सूपागार में आगे से कोई प्राणी नहीं मारा जायेगा' (कट्टीखाने राष्ट्र के लिये भयंकर उपदेव है।) —अशोक महान

'जो मानव मेरे साथ कार्य करता है, उसके सहयोग के अनुसार मैं उसे पुरस्कृत करूँगा। मेरी यह इच्छा है कि मनुष्य किसी जीव की हिंसा न करे।' —दारा महान

'यह निस्संदेह अज्ञानता और क्रूरता के कारण हैं कि यद्यपि अनेक प्रकार का भोजन उपलब्ध है तो भी मनुष्य जीवित प्राणियों की हिंसा करने पर तुले हुये हैं और उनके मारने में सहयोग देते हैं और उनको खाते हैं। किसी की दृष्टि उस सौन्दर्य की ओर नहीं जाती जो क्रूरता को रोकने में गर्भित है; बल्कि प्रत्येक अपने को पशुओं की क्रब बनाने पर तुला है।'

—अकबर महान

'जैन मंदिरों की सीमा में कोई भी जीव वध न करे। जो जीव वहाँ पहुँचेगा, वह अमर हो जावेगा, कोई उसे मारेगा नहीं।' —महाराणा राजसिंह

अनंतता और उसका ज्ञान

[कविवर बनारसीदास कृत परमार्थ वचनिका पर पूज्य स्वामीजी के प्रवचन से]

अनंत का अंत है ही नहीं, जो ज्ञान में जाना जा सके, परंतु ज्ञानसामर्थ्य ही ऐसा है कि अनंत को भी अनंतरूप से ही जान लेता है। यह ज्ञान की दिव्य महिमा है।

दृष्टांत द्वारा अनंतता का स्वरूप प्रदर्शित करते हैं, जैसे कि बड़ के वृक्ष का एक बीज हाथ में लेकर उसके ऊपर यदि हम दीर्घदृष्टि से विचार करें तो बड़ के उस बीज में एक बड़ का वृक्ष है। भाविकाल में जैसा वृक्ष होनेवाला है, वैसे विस्तार सहित उस बीज में वास्तविकरूप से विद्यमान है, अनेक शाखा-प्रशाखा-पत्र-पुष्प, फल युक्त हैं। उसके प्रत्येक फल में ऐसे अनेक बीज हैं। इसप्रकार की अवस्था का एक बड़ के बीज के अंदर विचार करना। और यदि सूक्ष्मदृष्टि से देखें तो उस बड़ के वृक्ष में जो-जो बीज हैं, वैसे-वैसे अंतर्गर्भित बड़ वृक्ष युक्त हैं। इस तरह एक वट वृक्ष में अनेक-अनेक बीज और एक-एक बीज में एक-एक वट वृक्ष—यदि उसका विचार करें तो भावी नय की प्रधानता से न तो वट वृक्ष की मर्यादा को पा सकते हैं और न बीज की मर्यादा को पा सकते हैं, इस तरह से अनंतता का स्वरूप समझना। उस अनंतता के स्वरूप को केवलज्ञानी पुरुष भी अनंत ही देखते हैं, जानते हैं और कहते हैं। अनंत का दूसरा कोई अंत नहीं है जो ज्ञान में भासित हो। इसलिए अनंतता अनंतरूप ही प्रतिभासित होती है। इसप्रकार आगम तथा अध्यात्म की अनंतता जानना।

अनंतता को समझाने के लिये यहाँ एक वृक्ष और बीज का दृष्टांत दिया है। वृक्ष और बीज की परंपरा अनादि की है, पहले वृक्ष या पहले बीज ?—तो परंपरा से दोनों अनादि के हैं, और सूक्ष्म विचार से देखने पर एक-एक बीज में भविष्य के अनंत वृक्षों की ताकत है। इसप्रकार दोनों की परंपरा का विचार करने से उसका कहीं भी पार नहीं आता। उसी तरह जीव में विकार की और कर्म की परंपरा अनादि काल से चली आ रही है और शुद्ध पर्याय का प्रवाह भी जगत में अनादि से चल ही रहा है। प्रथम सिद्ध या संसार ? तो दोनों अनादि के हैं। प्रथम विकार या कर्म ? तो दोनों की परम्परा अनादि की है। प्रथम द्रव्य या पर्याय ? प्रथम सामान्य या विशेष ? तो ये दोनों अनादि के हैं। प्रथम पश्चात् भेद उसमें नहीं है।

'द्रव्य की पहली पर्याय यह' यदि ऐसा कहें तो फिर वहाँ द्रव्य की ही आदि हो जाती है,

द्रव्य अनादि नहीं रहता। इसीप्रकार 'द्रव्य की अंतिम पर्याय यह है' ऐसा कहें तो वहाँ द्रव्य का अंत ही (नाश) हो जाता है, द्रव्य अनंत नहीं रहता। एक-एक पर्याय आदि-अंतवाली भले ही कहा जाये परंतु पर्याय के प्रवाह का आदि-अंत नहीं है, अर्थात् द्रव्यपर्याय में यह प्रथम और अंतिम ऐसी आदि-अंतता नहीं है। पर्याय का प्रवाह द्रव्य में पहले नहीं था, बाद में प्रारंभ हुआ अथवा वह प्रवाह कभी रुक जायेगा-ऐसा नहीं है। जिसप्रकार द्रव्य अनादि-अनंत है, उसीप्रकार उसके साथ में उसकी पर्याय का प्रवाह भी अनादि-अनंतरूप से ही चला ही आ रहा है। और यह सब केवलज्ञान में ज्ञात हो रहा है। देखो तो सही, इस जगत की वस्तुस्थिति। अनादि को अनादिरूप से और अनंत को अनंतरूप से, जैसा है वैसा केवली भगवान विकल्प के बिना जानते हैं।

प्रश्न—प्रथम पर्याय कौन-सी और अंतिम पर्याय कौन-सी, क्या इसे केवली भगवान नहीं जानते?

उत्तर—भगवान, जैसी वस्तु हो वैसी जानते हैं या उससे विपरीत जानते हैं? जो 'अनादि' है, उसकी आदि तो है ही नहीं तो फिर भगवान उसका अंत कहाँ से जानें? और जो अनंत है, उसका अंत है ही नहीं तो फिर भगवान उसका अंत कहाँ से जानें? यदि भगवान उसके आदि और अंत को जानते हैं तो फिर उसका अनादि-अनंतपन कहाँ रहा? भाई, यह तो स्वभाव का अचिंत्य विषय है। अहो! अनंतता जिस ज्ञान में समा गयी है, उस ज्ञान की दिव्य अनंतता लक्ष्य में लेते ही ज्ञान उसमें ही (ज्ञानस्वभाव की अनंत महिमा में ही) डूब जाता है, अर्थात् ज्ञान स्थिर हो जाता है, निर्विकल्प हो जाता है।

प्रश्न—यदि भगवान भी अनंत के छोर को नहीं जानते तो उनका ज्ञानसामर्थ्य मर्यादित हो गया?

उत्तर—नहीं, यदि भगवान अनंत को अनंत तौर पर भी न जानते हों तो उनका ज्ञान-सामर्थ्य मर्यादित कहा जा सकता है। परंतु भगवान तो केवलज्ञान की अमर्यादित सामर्थ्य द्वारा अनंत को भी अनंत तौर पर प्रत्यक्ष जानते हैं। भगवान उसका अंत नहीं जान सके, इस कारण उसको अनंत कह दिया है, ऐसा नहीं है। भगवान ने अनंत को अनंतपन से जाना, इससे उसे अनंत कहा।....सर्वज्ञ भगवान अनंत को भी जानते हैं, यदि न जानें तो उन्हें सर्वज्ञ कैसे कहा जा सकता है?

प्रश्न—यदि भगवान अनंत को जानते हैं तो भगवान के ज्ञान में उसका अनंत आ गया या नहीं ?

उत्तर—नहीं, भगवान ने अनंत को अनंतपन सहित जाना है। अनंत को अंतवाला नहीं जाना है। भगवान अनंत को नहीं जानते-ऐसा भी नहीं है और भगवान द्वारा जानने से उसका अंत आ जाता है, ऐसा भी नहीं है। अनंत, अनंतपन से रहकर भगवान के ज्ञान में मालूम देता है। यदि अनंत को अंतरूप से जानें तो वह ज्ञान मिथ्या, और यदि 'अनंत' को न जान सके तो वह ज्ञान संपूर्ण नहीं है।

प्रश्न—'अनंत' को ज्ञान में किस प्रकार से जाना जाता है ?

उत्तर—भाई, पदार्थ की अनंतता की अपेक्षा ज्ञानसामर्थ्य की अनंतता अधिक बढ़ी-चढ़ी हुई है, उससे बेहद-असीम ज्ञानसामर्थ्य अनंत को भी जान सकता है। ज्ञान की अचिंत्य सामर्थ्य यदि लक्ष्य में आ जाये तो ही यह बात बैठे ऐसी है। विकार में रुका हुआ ज्ञान मर्यादित है, वह अनंत को नहीं जान सकता, परंतु विकार बिना के ज्ञान में तो अचिंत्य अपार शक्ति है। वह अनादि-अनंत काल को, अनंतानंत आकाश प्रदेशों को—इन सबको साक्षात् जान लेता है। अरे, इससे तो अनंतगुना सामर्थ्य इसमें विकसित हुआ है।

प्रश्न—यहाँ वृक्ष और बीज के दृष्टांत से, विकार और कर्म इन दोनों की परम्परा को भी अनंत कहा है, तो फिर विकार का नाश होकर मोक्ष कब हो ?

उत्तर—वृक्ष और बीज की परंपरा सामान्यरूप से अनंत है। परंतु इस कारण कुछ सभी बीजों में से वृक्ष उगें ही, ऐसा कोई नियम नहीं है। बहुत से बीज उगने से पहले ही जल जाते हैं और उनके बीज वृक्ष की परंपरा का अंत आ जाता है। एक बार जो बीज जल गया, वह पुनः कभी भी नहीं उगता। उसीप्रकार जगत में सामान्यरूप से विकार और कर्म की परंपरा अनंत है, उसका जगत में से कभी अभाव होनेवाला नहीं है, परंतु इस कारण कुछ सभी जीव को ऐसी विकारी परंपरा चलती ही रहे, ऐसा नियम नहीं है; बहुत से जीव पुरुषार्थ के द्वारा विकार की परंपरा को दूरकर जो सिद्धपद को साधते हैं, उनके विकार की परंपरा का अंत आ जाता है। जिसने एक बार विकार के बीज को जला डाला, उसे पुनः कभी भी विकार उत्पन्न नहीं होता। इसप्रकार से विकार की परंपरा दूर हो सकती है।

प्रश्न—विकार की परम्परा तो अनादि काल की है, तो उसका अंत कैसे हो ?

उत्तर—परंपरा अनादि की हो, इसलिये उसका अंत न हो, ऐसा नहीं है। जिसप्रकार

वृक्ष-बीज की परंपरा अनादि की होने पर भी, किसी एक बीज के जल जाने से उसकी परंपरा का अंत आ जाता है, उसीप्रकार विकार की परंपरा अनादि की होते हुए भी सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र के द्वारा धर्मात्मा जीव के उसका अंत आ जाता है। जिसप्रकार मोक्षमार्ग अनादि से न होते हुए भी उसका नवीन प्रारंभ हो सकता है, उसीप्रकार (विकार) अनादि का होने पर भी उसका अंत हो सकता है।

प्रश्न—आगम और अध्यात्म (अर्थात् विकार और शुद्धता) दोनों में जो अनंतता कही है, वह किसप्रकार से ?

उत्तर—विकार में अनंत प्रकार हैं, और उनके निमित्तरूप कर्मों में अनंतानंत परमाणु हैं। इसप्रकार से आगम पद्धति में अनंतता है; और जीव के अनंत गुणों की अनंत निर्मल पर्यायें हैं। एक-एक निर्मल पर्याय अनंत भावों से और अनंत सामर्थ्य से भरपूर है। ज्ञान की एक लघु पर्याय में भी अनंत अविभाग प्रतिच्छेद अंशों की सामर्थ्य है। इसीप्रकार अध्यात्म पद्धति में भी अनंतता जानना चाहिये। एक-एक आत्मा में अनंत गुण हैं, एक-एक गुण में अनंत निर्मल पर्यायों को विकसित करने की शक्ति पड़ी हुई है और एक-एक निर्मल पर्याय अनंत सामर्थ्य सहित है। तेरी एक आत्मा में कितनी अनंत सामर्थ्य है, उसका लक्ष्य करने से स्वसन्मुख वृत्ति होती है और अपूर्व अध्यात्मदशा प्रगट होती है। एक ओर अनादि की विकार की धारा और दूसरी ओर स्वभाव सामर्थ्य की धारा भी अनादि की साथ-साथ में चली आ रही है, विकार की धारा के समय कभी भी स्वभाव सामर्थ्य की धारा कहीं दूर नहीं हुई है, स्वभाव सामर्थ्य का कुछ अभाव नहीं हुआ है। परिणति जहाँ स्वभाव सामर्थ्य की ओर झुकी कि वहाँ विकार की परंपरा का प्रवाह बंद हो जाता है और अध्यात्म परिणति की परंपरा का प्रारंभ होता है, जो पूर्ण होकर सादि-अनंत काल तक रहा करेगी। इसलिए हे भाई, तू अंतर्मुख होकर अपनी स्वभाव सामर्थ्य को विचार में ला... लक्ष्य में ला... प्रतीति कर... अनुभव कर। लोगों को बाहर का विश्वास आता है कि एक बीज में से इतना विशाल दस मील का विस्तार वाला वट का वृक्ष हुआ, परंतु चैतन्य शक्ति के एक बीज में से अनंत केवलज्ञानरूपी वट को विस्तारित करने की शक्ति है, उसका विश्वास नहीं आता। यदि जीव चैतन्य की सामर्थ्य का विश्वास करे तो उसके आश्रय से रत्नत्रय धर्म की अनेक शाखा-प्रशाखायें प्रगट करके मोक्षफल सहित महान वृक्ष उत्पन्न हो। भविष्य में उगनेवाले मोक्ष वृक्ष की शक्ति इस ही समय तेरे चैतन्य बीज में विद्यमान है। सूक्ष्म दृष्टि से इसको विचार में लेकर अनुभव करने से अपूर्व कल्याण होगा।●●

सोनगढ़ (सुवर्ण-पुरी) समाचार

तारीख ३-१-६७ परमोपकारी पूज्य कानजीस्वामी सुख-शांति में विराजमान हैं। प्रवचन में सवेरे श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव विरचित पुरुषार्थसिद्धि उपाय नामक श्रावकाचार तथा दोपहर को समयसारजी शास्त्र चलता है। मंगलवार तारीख ३-१-६७ पोष कृष्णा अष्टमी श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव की 'आचार्य' पदवी दिन बड़े उत्सव सहित मनाया गया।

आगामी विहार समाचार

तारीख २४-१-६७ लाठी, कलापीनगर, अमरेली, अमरापुर।

जसदण - (वाया-बोटाद जंक्शन) तारीख ३०-१-६७ से तारीख २-२-६७ तक, पश्चात्

पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

मोटा आंकड़िया (जिला अमरेली सौराष्ट्र) तारीख ३-२- ६७ से १०-२-६७ तक पश्चात्।

हिम्मतनगर में, महावीर नगर (अहमदाबाद जिला साबरकांठा) पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव। तारीख १२-२-६७ से २०-२-६७ तक।

भावनगर बंदर (सौराष्ट्र) तारीख २२-२-६७ से २५-२-६७।

अहमदाबाद तारीख २६, आबू तथा पाली तारीख २७, मदनगंज (किशनगढ़) तारीख २८ तथा तारीख १ मार्च, कुचामन तारीख २, लाडनू तारीख ३-४, सीकर तारीख ५, जयपुर तारीख ६ से १६। (साहेला राजस्थान वेदी प्रतिष्ठा स्थगित है।) तारीख १७ श्री महावीरजी से बयाना, इटावा, कानपुर, इलाहाबाद, वाराणसी, डालमियानगर सबमें एक दिन शिखरजी तारीख २४-३-६७ से तारीख २८ तक चार दिन पश्चात् कलकत्ता चार दिन है।

समाचार-संग्रह

आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी द्विशताब्दि समारोह

१३ मार्च सन् ६७

आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी साहब महान विद्वान व सुधारक थे, उन्होंने अपने अल्प जीवनकाल में ही अनेक उच्चकोटि के 'मोक्षमार्गप्रकाशक' जैसे अनुपम ग्रंथों की रचना एवं 'गोमट्टसार' जैसे महान कठिन ग्रंथों की अर्थ संदृष्टि सहित अत्यंत सरल भाषा में टीका तैयार करके धर्म, समाज एवं जिनवाणी माता की अपूर्व सेवा की थी।

यह जयपुर नगरी बहुत भाग्यवान है, जहाँ पर ऐसे-ऐसे अनेकों मोक्षमार्ग महापुरुषों ने जन्म लेकर जिनवाणी की सतत साधना के द्वारा स्व-पर कल्याण कर इस नगरी को पवित्र किया। उस महापुरुष आचार्यकल्प पंडित टोडरमलजी ने उस ही साधना की रक्षा के लिये अपने आपको इसी भूमि पर बलिदान कर दिया। उनके स्वर्गवास को २०० वर्ष पूर्ण हो रहे हैं। अत: हम सब मोक्षार्थियों का कर्तव्य है कि उनके उपकार की स्मृति को ताजा करने के लिये एवं उनके बताये हुये मार्ग पर प्रवृत्ति करने के लिये उनके बलिदान को द्विशताब्दि समारोह के रूप में सारे भारतवर्ष में विशेष-विशेष आयोजनों के साथ अखिल भारतीय स्तर पर मनाया जावे।

इस संबंध में दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल जयपुर की मीटिंग में निम्न निश्चय स्वीकृत हुये हैं। अत: समस्त जैन समाज से निवेदन है कि सब कार्यक्रमों में पूर्ण उत्साह से भाग लेकर सभी कार्यक्रमों को सफल बनावें।

१— श्री टोडरमलजी स्मारक भवन गांधीनगर का शिलान्यास तारीख २०-२-६५ को हुआ था। वह विशाल स्मारक जल्दी ही तैयार हो जावेगा। उसका उद्घाटन समारोह इसी अवसर पर कराया जावे।

२— उक्त अवसर पर श्री टोडरमलजी साहब की रचनाओं का एवं अन्य सत् साहित्य का प्रकाशन किया जावे।

३— जैनाजैन पत्रों में प्रचार कर द्विशताब्दि समारोह मनाने के लिये समाज में जागृति उत्पन्न की जावे।

४— द्विशताब्दि समारोह के अवसर पर पंडितजी साहब के संबंध में व उनके साहित्य के संबंध में परिचयात्मक लेख व श्रद्धांजलियाँ आदि संग्रह कर उनके योग्य प्रकाशन की व्यवस्था की जावे।

५— विभिन्न मंदिरों में स्वाध्याय के लिये शास्त्र सभाएँ चालू की जावें और जो चल रही हैं-उनमें उपस्थिति बढ़ाने का प्रयत्न किया जावे, क्योंकि ज्ञान ही एक ऐसा साधन है जो शिथिलाचार को दूर कर सकता है एवं धार्मिक संस्कारों को मजबूत करेगा।

वास्तव में वर्तमान काल में शास्त्र-स्वाध्याय तत्त्वचर्चा, सत्समागम ही आत्मा के स्वरूप को समझने का एकमात्र साधन है। आत्म-स्वरूप समझे बिना आत्मलाभ अर्थात् मोक्षमार्ग प्राप्त करना असंभव है, अत्यंत दुर्लभता से प्राप्त इस मनुष्य जन्म का सार मात्र मोक्षमार्ग प्राप्त करना ही है। अत: मोक्षार्थी का परम कर्तव्य है कि स्व-कल्याण की दृष्टि से स्वाध्याय की प्रवृत्ति को विशेष-विशेष बढ़ावे।

जयपुर में निम्न स्थानों पर प्रतिदिन नियमित समय पर शास्त्र सभाएँ चलती हैं, उनमें सम्मिलित होकर धर्मलाभ लीजिये।

(१) श्री बड़ा मंदिरजी, रास्ता हल्दियान प्रात: ७.०० से ८.००, (२) श्री मंदिरजी बड़ा दीवानजी, रास्ता मनिहारों का सायं ७.०० से ८.००, (३) श्री मंदिरजी जोबनेर, रास्ता खेजड़ा वालों का प्रात: ७.०० से ८.००, (४) श्री मंदिरजी छाबड़ान, पंडितजी का रास्ता दिन में २.०० से ३.००, (५) श्री मंदिरजी चंपारामजी पांड्या, रास्ता अजबघर का सायं ७.०० से ८.००, (६) श्री पार्श्वनाथ चैत्यालय अशोकनगर, सी-स्कीम रात्रि ८.०० से ९.००, (७) श्री नसियाँजी विजयलालजी पांड्या, आमेर की सड़क, प्रात: ६.०० से ७.००।

श्री मंदिर बड़ा दीवानजी में प्रतिदिन श्रद्धेय पंडित श्री चैनसुखदासजी साहब न्यायतीर्थ शास्त्र प्रवचन करते हैं। अत: सभी महानुभावों को अत्यधिक संख्या में पधारना चाहिये।

६— धार्मिक विद्यालय व रात्रि पाठशालायें चलावें और (१) टोडरमल विद्यालय, चैत्यालय गोदीकान बोरडी का रास्ता (२) दर्शन विद्यालय, चाकसू का चौका (३) दर्शन विद्यालय, बापूनगर में जो चल रहे हैं-उन्हें प्रोत्साहन देकर विकसित व उन्नत किया जावे। विशेषकर अभी स्कूल आदि की छुट्टियों में छात्रों के लिये विशेष धार्मिक कक्षायें चालू की जावे।

७— धार्मिक शिक्षण शिविरों का आयोजन किया जावे, जिनमें बाल, नवयुवक, प्रौढ़ स्त्री, पुरुष सभी भाग लेवें।

८— जैन धार्मिक ग्रंथ, चैत्यालय गोदीकान रास्ता बोरडी में लागत मूल्य पर प्राप्त किये जा सकते हैं। सत्साहित्य व आत्मधर्म का अत्यधिक प्रचार प्रसार व बिक्री का प्रबन्ध किया जावे।

आशा है सम्पूर्ण जैन समाज इन पुनीत-धार्मिक कार्यों में पूर्ण सहयोग प्रदान करेगा।

निवेदक—
मंत्री श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल,
सेठी भवन, हनुमानजी का रास्ता, जयपुर।

पूज्य कानजीस्वामी द्वारा सातिशय धर्म प्रभावना के समाचार

अहमदाबाद—तारीख १०-१२-६६ से तारीख १३ तक स्वामीजी का प्रवचन, तत्त्वचर्चा, जिन मंदिर में भक्ति आदि कार्यक्रम था, स्थानीय तथा आसपास गाँवों से बड़ी संख्या में धर्म जिज्ञासुओं ने एकत्र होकर लाभ लिया, यह गुजरात के पाटनगर है और स्वामीजी का नाम सुनते ही जैनेतर समाज के उच्च शिक्षित वर्ग भी खास आते हैं। पालेज से वापिस लौटते समय भी प्रवचन तथा शंका-समाधान का कार्यक्रम था, यहाँ खाडीया विभाग में बड़ा विशाल जिन मंदिर बनाने का काम शुरु है।

बड़ोदरा—तारीख १४-१२-६६ स्वागत जुलूस पश्चात् दो बार न्याय मंदिर के होल में प्रवचन का कार्यक्रम था।

मीआगांव-करजण—१५-१२-६६ यहाँ भी बड़ा भारी उत्साहमय कार्यक्रम था आसपास के गाँवों में धर्म जिज्ञासु पधारे थे भारी अनुरोधवश स्वामीजी जींथरी गाँव में पधारे थे।

पालेज—(भरूच) तारीख १६ से २३ तक श्री कुँवरजी जादवजी के सुपुत्रों के द्वारा परमोपकारी पूज्य स्वामीजी को बड़ा भारी अनुरोध सहित आमंत्रण था। जिनमंदिर में १०वीं वर्षगाँठ बड़े उत्साह सहित मनाई, जिनमंदिर में मंडल विधान पूजा भक्ति, रथयात्रा, स्वामीजी के प्रवचन-रात्रि को शंका समाधान का कार्यक्रम था, बम्बई आदि बाहर गाँव से आमंत्रित

मेहमानों की बड़ी संख्या थी, यहाँ स्वामीजी प्रति लोगों को इतना प्रेम था जो आसपास के देहातों से दर्शनार्थ का मेला लगा था यहाँ विशेष धर्म प्रेम व साधर्मी प्रति वात्सल्य का उदाहरण रूप था, श्वेताम्बर जैन भाईयों का उत्तम सहयोग था। यह है पूज्य स्वामीजी की पवित्र प्रभावना का उदय।

बरवाला—(सौराष्ट्र) तारीख २५-१२-६६ स्वामीजी का स्वागत मंगल प्रवचन-शंका समाधान तथा विशाल पंडाल में हजारों भक्तों के बीच श्री जिनप्रतिमाजी को वेदी में विराजमान कर भक्ति का कार्यक्रम था। यहाँ भी कई दिन से तैयारी चल रही थी नजदीक के गाँवों से तथा मुम्बई तथा सूरत से खास मेहमान आये थे, श्री व्रजलाल भाईलाल जवेरी ने सजोड़े ब्रह्मचर्य प्रतिज्ञा ली—सारा शहर का बड़ा भारी उत्साह प्रेम जो देखते बनता था, तारीख २६ को स्वामीजी सोनगढ़ पधारे।

धार्मिक शिक्षण शिविर

(सर्वज्ञ वीतराग कथित तत्त्वज्ञान की प्रभावना)

जयपुर—तारीख १५-१२-६६ से तारीख ३१ तक जैन मुमुक्षु मंडल जयपुर के तत्त्वावधान में किया गया था। जिसमें प्रधान वक्ता श्री खेमचंदजी जे. सेठ सोनगढ़, श्री पंडित फूलचंद्रजी सिद्धांत शास्त्री वाराणसी, श्री धन्नालालजी लश्कर तथा श्री चीमनलालजी सोनगढ़ तथा नेमीचंदजी रखियाल पधारे थे, छह जगह शिक्षण कक्षायें थीं ७०० से ८०० तक हमेशा लाभ ले रहे थे, प्रवचन दो जगह दिवान जी मंदिर तथा बड़ा मंदिर में होता था। सख्त ठंड होने पर भी सब ने अपूर्वरुचि सहित समय पर उपस्थित होकर तत्त्वज्ञान का लाभ लिया। यह है धर्म जिज्ञासा का प्रभाव

—ब्रह्मचारी गुलाबचंद जैन

धर्म प्रभावना के अपूर्व समाचार

शिरपुर (जिला-मूर्तिजापुर)—यहाँ धन्यकुमार मोतीलाल ढसालाकर की ओर से अष्टाह्निका नंदीश्वर महोत्सव था। तारीख १९-११-६६ को फतेहपुर निवासी श्री बाबूभाई का मूर्तिजापुर स्टेशन पर समूह स्वागत हुआ। वहाँ से कारंजा पहुँचे, बड़ा भारी स्वागत हुआ। सवेरे प्रवचन सुनकर सारे कारंजा में उनकी प्रसिद्धि हो गई और दोपहर तथा रात्रि को प्रवचन में असाधारण भीड़ हो गई। उनके प्रति खूब आग्रह होने से तारीख २० को जाते समय भी सवेरे

प्रवचन करना पड़ा। पश्चात् शिरपुर अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ क्षेत्र में अष्टाह्निका महोत्सव पर पहुँचे, प्रथम उनका शिरपुर में बड़े उत्साह से स्वागत-सहित प्रोसेसन निकला। श्री मंदिरजी में दर्शन के पश्चात् प्राचीन मंदिरजी के ऊपर श्री बाबूभाई के हाथ से ध्वजारोहण हुआ, उस समय का दृश्य देखकर लोगों के नेत्रों से हर्ष भरे आंसू निकल पड़े कि अहो! इतने स्वाभिमान से, इतने उत्साह से अपना कार्यक्रम पूरा कर रहे थे। इन्द्रों का जुलूस, मंगल-कलश स्थापन होकर पूजन विधान शुरु हुआ, जनता प्रभावित हुई, प्रवचन में संख्या बढ़ने लगी। श्वेताम्बरी ट्रस्टियों ने आकर पूरा सहयोग दिया। यह भी पूज्य कानजीस्वामी का आशीर्वाद मानता हूँ। हमेशा दो बार प्रवचन भक्ति तथा बृहदपूजा विधान चलता रहा। पूज्य कानजीस्वामी के जीवन परिचय पर व्याख्यान हुए। श्री कुन्दकुन्द आचार्य के विशाल चित्र का अनावरण समारंभ हुआ। आस पास के गाँवों से बहुत से धर्म जिज्ञासु एकत्र हुए थे। तारीख २३ की रात को पंडित श्री बाबूभाई को बड़े आग्रह से फिर से कारंजा ले गये। यहाँ नागपुर से ऐ.जे.आर. मंडल जैन सांस्कृतिक प्रोग्रामवाले रेकोर्डिंग के लिये आये थे। नागपुर रेडियो स्टेशन पर जैनियों का प्रोग्राम रखने के लिये श्री बाबूभाई का प्रवचन तथा श्री मधुकरजी तथा सौ० पुष्पा बहिन मलकापूर, श्री कनुभाई दाहोद, श्री चन्दुभाई फतेपुर के भी भजन, भक्ति-पूजनादि टेपरील में भर लिये गये थे। कारंजा में महावीर ब्र० आश्रम के विद्यार्थियों का विविध कार्यक्रम रखा गया था। तारीख २४ को श्री बाबूभाई मुक्तागिरी आये तब इंदौर, भोपाल, दाहोद, मलकापुर, खंडवा-जबलपुर आदि से बहुत से लोग खास बाबूभाई के समागम और तीर्थवंदनार्थ आ पहुँचे। सबके आगमन से रथयात्रा में खूब रंग आया। विद्वानों का प्रवचन व मेला भी था। इस अभूतपूर्व धर्म प्रभावना के लिये श्री बाबूभाई तथा प्रचार समिति सोनगढ़ को अनेकशः धन्यवाद।

धन्यकुमार भोरे मंत्री विदर्भ जैन तीर्थ सुरक्षा मंडल।

धर्म प्रभावना समाचार

उदयपुर— श्री खेमचन्द जे. सेठ, जयपुर के धार्मिक शिक्षा आयोजन सम्पन्न करके यहाँ तारीख १-१-६७ को पधारे मंडल तथा शहर के प्रमुख अग्रणी व्यक्तियों तथा एरोड्राम स्टेशन पर भव्य स्वागत हुआ, दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम में प्रवचन हुआ, तारीख ३ तक सात प्रवचन हुए। समाज ने उत्तम वक्ता समझकर भारी संख्या में आपके प्रवचनों का शांतिपूर्वक लाभ लिया। तारीख ४ तक कार्यक्रम है।

जिन चैत्यालय तथा स्वाध्यायभवन शिलान्यास

उदयपुर—में जिसकी बड़ी आवश्यकता समझकर श्री चंद्रसेनजी बंडी तथा श्री उग्रसेन बंडी जी ने पवित्र धर्म आराधना हेतु इस मंगलमय धर्मायतन के लिये स्थानीय मुमुक्षु मंडल के नाम से जिन चैत्यालय तथा स्वाध्याय भवन निर्माण कराने के लिये शिलान्यस विधि तारीख २३-१-६७ को जयपुर निवासी श्री मीठालालजी महेन्द्रकुमार सेठी के बरदहस्त से होनेवाली है। कई विद्वानों एवं खास साधर्मीबंधु पधारने की पूर्ण संभावना है, सर्व धर्मबंधुओं से दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल की प्रार्थना है कि इस धार्मिक प्रसंग पर पधारकर अनुगृहीत करें—

मंत्री श्री मुमुक्षु मंडल
डि० बड़ी होली उदयपुर राजस्थान

जयपुर में धार्मिक शिक्षा समारोह के खास समाचार

श्री नेमीचंदजी पाटनीजी का पत्र है—मुमुक्षु मंडल द्वारा शिक्षण समारोह खूब आनंद से संपन्न हुआ। तारीख १४-१२-६६ श्री खेमचंदभाई ऐरोप्लेन से यहाँ आये, ६० व्यक्ति वहाँ स्वागत में पहुँचे थे। फिर सायंकाल से कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। श्री पंडित फूलचंदजी सिद्धांत शास्त्री वाराणसी, श्री प्रकाशचंदजी हितैषी, श्री चिमनलालजी सोनगढ़, श्री धन्नालालजी लश्कर, श्री नेमीचंदजी (रखियाल) से पधारे थे। तारीख १५ से इस शिक्षण शिविर का प्रारंभ हुआ, उसमें प्रवचनादि मुख्य कार्यक्रम तेरह पंथीयान बड़े मंदिर में सवेरे एक घण्ट मोक्षमार्गप्रकाशक पर तथा बड़े दीवानजी के मंदिर में सायं ८ से ९ समयसारजी शास्त्र पर प्रवचन का रोजाना कार्यक्रम था। हमेशा प्रातः जैन सिद्धांत प्रवेशिका श्री नेमीचंदभाई द्वारा, सायं छहढाला पर श्री चिमनभाई द्वारा, प्रातः आदर्श नगर में भी मुलतानी बन्धुगण जो असाधारण तत्त्वरसिक हैं, उनके मंदिरजी में तथा दोपहर को बड़े मंदिर व अशोकनगर में शिक्षण कक्षाएँ चलाई जाती थीं, रात्रि को बापूनगर में भी सबकी शिक्षण की शैली अपने-

अपने प्रभावक ढंग की बहुत सुंदर थी। काला छाबड़ों के मंदिर में तत्त्वचर्चा का आयोजन था, शुरु में श्री पंडित फूलचंदजी शास्त्री रहे वहाँ तक वे शंका समाधान करते थे, बाद में श्री खेमचंदभाई करते थे, पंडित श्री फूलचंदजी ६ दिन ठहरे थे, प्रातः सायं भिन्न-भिन्न स्थानों पर उनके भी प्रवचन होते थे। बड़ी कड़ाके की सर्दी के समय भी लगभग ५००-५०० भाई-बहनों की उपस्थिति होती थी। तथा भिन्न-भिन्न स्थानों के कार्यक्रमामें भी प्रतिदिन २५०-३०० भाई-बहन लाभ लेते थे, इसप्रकार रोजाना करीब ८०० व्यक्ति इस शिक्षण कार्यक्रम में भाग लेते थे और सब स्थानों पर मिलाकर प्रतिदिन ८ घंटा कार्यक्रम चलता था, सारी जैन समाज में एक प्रकार का नवीन प्रकार के उत्साह का वातावरण बन गया था। जितने भी समाज में धर्म रुचिवाले जिज्ञासु थे सभी बड़ी रुचि से भाग लेते थे, सब समय के पहले ही आ जाते थे, कार्यक्रम पूर्ण होने तक तेज से तेज सर्दी में भी उठकर नहीं जाते थे। बड़ी एकाग्रता और रुचि से लाभ लेते थे। प्रशंसा करते नहीं अघाते थे। श्री खेमचंदभाई की सूक्ष्म से सूक्ष्म विषयों की बड़ी सरलता से क्रमबार समझाने की अनोखी शैली पर लोग बहुत मुग्ध थे, कितनी ही बार तो लोग गद्‌गद् हो जाते थे। अंतिम दिन जैसे-जैसे नजदीक आते जाते थे, लोगों की रुचि उतनी ही बढ़ती जाती थी और शिक्षण शिविर ज्यादा दिन चलाते रहने का जोरदार आग्रह करते थे, खेमचंदभाई को तारीख २५ को रवाना होना था, फिर भी तारीख ३१ तक कार्यक्रम रखना पड़ा। इस शिविर का कार्यक्रम बहुत सफल रहा, तत्त्वजिज्ञासुओं में एक प्रकार से नवीन चेतना तथा क्रांति आ गई।

तारीख ३१ की रात्रि को श्री पंडित चैनसुखदासजी की अध्यक्षता में बाहर से पधारे हुए सभी विद्वानों का व खासकर श्री खेमचंदभाई का समाज की ओर से सम्मान किया गया। बड़े दीवानजी का मंदिर भर गया था, बहुत से प्रतिष्ठित व्यक्तियों एवं विद्वानों ने इस आयोजन की खूब प्रशंसा की एवं आये हुए विद्वानों का सम्मान प्रदर्शित किया, श्री पंडित चैनसुखदासजी ने अपने ४५ मिनिट के भाषण में इस आयोजन की उपयोगिता पर एवं सफलता पर तथा सोनगढ़ के संबंध में लोगों की मिथ्या धारणा के संबंध में स्पष्टीकरण कर अनेक प्रकार से सराहना की, आगत महानुभावों का अभिनंदन किया, समारोह का यह अंतिम दृश्य बहुत ही भावभीना एवं तत्त्व के प्रति लोगों की रुचि का सचित्र, सजीव प्रदर्शन था। उपरोक्त कार्यक्रम के अलावा रात्रि के समय बंबई तथा दादर स्थित जिनमंदिर, समवसरण की पंच कल्याणक प्रतिष्ठा की रंगीन

फिल्म तथा श्री कानजीस्वामी की विशाल संघ सहित गिरनार यात्रा की तथा राजकोट पंच कल्याण की फिलम का प्रदर्शन पश्चात् कवितापाठ तथा भजन भक्ति का कार्यक्रम रखा जाता था, हम सबकी भावना थी कि इस आयोजन से लोगों की सर्वज्ञ वीतराग कथित निर्मल तत्त्व समझने की ओर रुचि जागृत होकर सच्चे जिज्ञासुओं की संख्या बढ़े; वह पूर्ण सफल हुई है। सभी आगन्तुक मेहमानों की सब तरह की व्यवस्था श्री मीठालालजी महेन्द्रकुमारजी सेठी के यहाँ ही थी। उसीप्रकार श्री गोदीकाजी ने भी दिन-रात एक कर दिया था, सब व्यवस्था जुटाने में सावधान रहकर भी किसी भी प्रोग्राम को नहीं छोड़ते थे। इसप्रकार यह आयोजन पूर्ण सफल तथा आशातीत फलप्रद रहा।

निवेदक—
नेमीचंद पाटनी
जयपुर

तारीख २-१-६७

मोक्षमार्गप्रकाशक (आधुनिक हिन्दी भाषा में)

आचार्यकल्प श्री पंडित प्रवर टोडरमलजी कृत यह उत्तम रचना है। मूल स्वहस्त लिखित प्रति द्वारा अक्षरश: अनुवाद कराके, मिलान कराके, बड़े भारी श्रमपूर्वक और अपूर्व उत्साह द्वारा यह प्रकाशन छप चुका है और पंडित जी कृत रहस्यपूर्ण चिट्ठी तथा कविवर पंडित बनारसीदासजी कृत परमार्थ वचनिका; निमित्त-उपादान चिट्ठी यह तीन अधिकार भी मूल प्रतियाँ प्राप्त करके प्रकाशन में लगा दी हैं। प्रथम से ही इनके ९००० संख्या के ग्राहक हो चुके हें। वे सब साधर्मीजन तीव्र जिज्ञासा सहित भारी तकादा कर रहे हैं, अब इस पुस्तक का वाईडिंग हो रहा है। लागत मूल्य ४.५० हुआ है किंतु इसका उत्तम ज्ञान प्रचार हेतु मात्र २) मूल्य रखा गया है। यह पुस्तक तारीख २० जनवरी तक तैयार होकर आ जाना संभव है। ग्राहक गण उतने समय धैर्य रखें। जिन्हों का प्रथम आर्डर है सब मिलकर सूचना दीजियेगा कि यह पुस्तकें मदनगंज से रेल पार्सल द्वारा वी.पी. बिल्टी से भेजी जाये या आपके नाम पर लिखकर भेजी जाये।

श्री दिगंबर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

परमपूज्य श्री कानजी स्वामी के आध्यात्मिक वचनों का अपूर्व
लाभ लेने के लिये निम्नोक्त पुस्तकों का—

अवश्य स्वाध्याय करें

श्री समयसार शास्त्र	५–०
श्री प्रवचनसार शास्त्र	४–०
श्री नियमसार शास्त्र	४–०
श्री पंचास्तिकाय संग्रह शास्त्र	३–५०
समयसार प्रवचन, भाग १–२–३	अप्राप्य
समयसार प्रवचन भाग ४	४–०
[कर्ताकर्म अधिकार, पृष्ठ ५६३]	
आत्मप्रसिद्धि	४–०
मोक्षशास्त्र बड़ी टीका (तृ०), पृष्ठ–९००	५–०
स्वयंभू स्तोत्र	०–५०
मुक्ति का मार्ग	०–५०
मोक्षमार्ग–प्रकाशक की किरणें प्र०	१–०
'' ''द्वितीय भाग	२–०
जैन सिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला, भाग १–२–३	०–६०
योगसार–निमित्त उपादान दोहा, बड़ा टा.	०–१२
श्री अनुभवप्रकाश (दीपचंद्रजी कृत)	०–३५
श्री पंचमेरु पूजा संग्रह आदि	१–०
बृ.दसलक्षण धर्मव्रत उद्यापन पूजा	०–७५
देशव्रत उद्योतन प्रवचन	६–०
अष्टप्रवचन (ज्ञानसमुच्चयसार)	१–५०
मोक्षमार्गप्रकाशक (श्री टोडरमलजी कृत) आधुनिक भाषा में	प्रेस में
समयसार कलश टीका (पं. राजमल्लजी पांडे कृत) आधुनिक भाषा में	प्रेस में

[डाकव्यय अतिरिक्त]

जैन बाल पोथी	०–२५
छहढाला बड़ा टाईप (मूल)	०–१५
छहढाला (नई सुबोध टी.ब.) सचित्र	१–०
ज्ञानस्वभाव ज्ञेयस्वभाव	प्रेस में
सम्यग्दर्शन (तीसरी आवृत्ति)	१–८५
जैन तीर्थयात्रा पाठ संग्रह	१–४५
अपूर्व अवसर अमर काव्य पर प्रवचन प्रवचन और श्री कुंदकुंदाचार्य द्वादशानुप्रेक्षा व लघु सामा. प्रेस में	
भेदविज्ञानसार	२–०
अध्यात्मपाठ संग्रह	४–०
वैराग्य पाठ संग्रह	१–०
निमित्तनैमित्तिक संबंध क्या है ?	०–१५
स्तोत्रत्रयी	०–५०
लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०–२५
'आत्मधर्म मासिक' इस एक वर्ष के लिये	२–०
'' पुरानी फाईलें सजिल्द	३–७५
शासन प्रभाव तथा स्वामीजी की जीवनी	०–१२
जैनतत्त्व मीमांसा	१–०
बृ०मंगल तीर्थयात्रा सचित्र गुजराती में ग्रन्थ का मात्र	१८) ६–०
अभिनंदन ग्रंथ	७–०

मिलने का पता—
श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

मुद्रक—नेमीचन्द बाकलीवाल, कमल प्रिन्टर्स, मदनगंज (किशनगढ़)
प्रकाशक—श्री दि० जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट के लिये—नेमीचन्द बाकलीवाल।